MA-HINDI-103(H

विशेष साहित्यकार अज्ञेय

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

SWAMI VIVEKANAND
SUBHARTI UNIVERSITY
Meerut (National Capital Region Delhi)

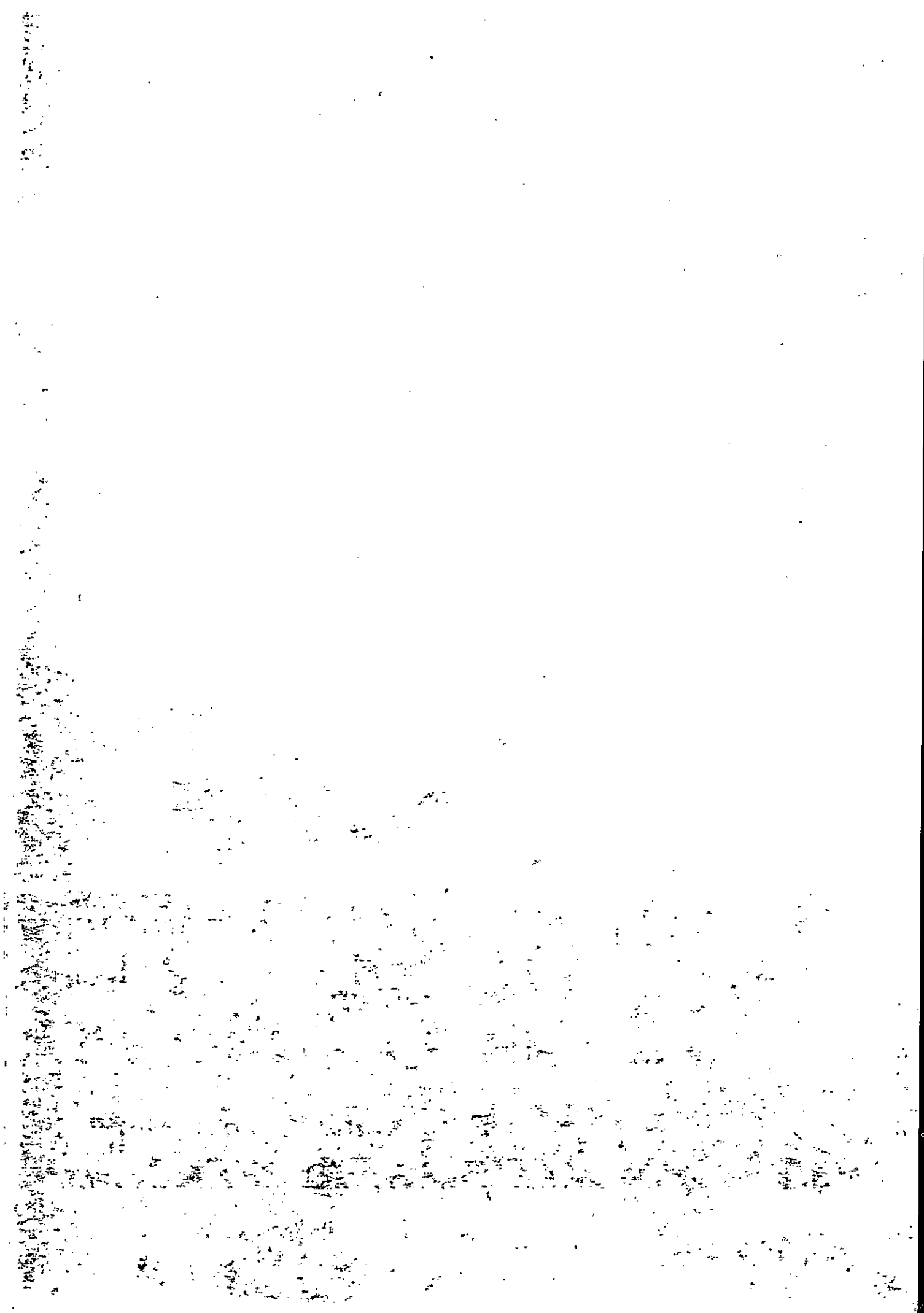

विशेष साहित्यकार अज्ञेय

MA HINDI–103(H)

Self Learning Material

Directorate of Distance Education

SWAMI VIVEKANAND SUBHARTI UNIVERSITY
MEERUT–250 005
UTTAR PRADESH

SLM module developed by :
Tripty Mittal

Reviewed by :
Dr. Seema Sharma

Assessed by :
Study Material Assessment Committee, as per the SVSU ordinance No. VI (2)

Copyright © विशेष साहित्यकार अज्ञेय Pragati Prakashan, Meerut

No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any meaning now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior permission from the publisher.

Information contained in this book has been published by Pragati Prakashan, Meerut and has been obtained by its authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the publisher and its author shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specially disclaim and implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by : Pragati Prakashan, 240 W.K. Road, Meerut – 250 001
Tel. 2640642, 2643636, 6544643, E-mail : pragatiprakashan@gmail.com

Typeset at : Pragati Laser Type Setters Pvt. Ltd., Meerut Printed at : Arihant Electric Press, Meerut

EDITION : 2021

Syllabus

विशेष साहित्यकार अज्ञेय

उदेश्य–

छात्र कवि अज्ञेय जी के रचनाओं ज्ञान को प्राप्त कर सकेंगें

छात्र अज्ञेय जी की काव्य मे आस्था एवं विश्वास का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।

पाठ्यकम

ईकाई–1 अज्ञेय : तार सप्तक, भवानी प्रसाद मिश्र 'वाणी की दीनता' (कविता)

अज्ञेय : जीवनवृत्त एवं कृतित्व

अज्ञेय के काव्य में प्रकृति–चित्रण

अज्ञेय की काव्य प्रवृत्तियाँ

अज्ञेय का अभिव्यक्ति पक्ष

अज्ञेय के काव्य में आस्था एवं विश्वास

अज्ञेय के काव्य में प्रकृति एवं प्रेस

ईकाई–2 गजानन माधव मुक्ति बोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है।

ईकाई–3 धर्मवीर भारती : अंधायुग, नरेश मेहता : वन पांखी सुनो

ईकाई–4 दुष्यंत कुमार : सूर्य का स्वागत, रधुवीर सहाय : हँसो–हँसो जल्दी हँसो।

पाठ्य–पुस्तकें

हरी घास पर क्षण भर प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली

बावरा अहेरी प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली

कितनी नावें में कितनी बार प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली

तार सप्तक – संपा. अज्ञेय

दूसरा सप्तक – संपा. अज्ञेय

नई कविता की भूमिका – श्री अंजनी कुमार

विषय-सूची

1. **अज्ञेय का जीवन, काव्य एवं जीवनवृत्त** 1-22

1.1 उद्देश्य 1

1.2 प्रस्तावना 1

1.3 अज्ञेय का जीवनवृत्त एवं कृतित्व 2

1.4 नई कविता और अज्ञेय 2

1.5 अज्ञेय की काव्य प्रवृत्तियाँ 4

1.6 अज्ञेय के काव्य में प्रकृति चित्रण 8

1.7 सारांश 16

1.8 प्रश्नावली 22

2. **अज्ञेय काव्य में प्रेमभाव एवं काव्य अभिव्यक्ति** 23-40

2.1 उद्देश्य 23

2.2 प्रस्तावना 23

2.3 अज्ञेय के काव्य में प्रेमभाव 24

2.4 अज्ञेय का अभिव्यक्ति पक्ष 29

2.5 सारांश 40

2.6 प्रश्नावली 40

3. **अज्ञेय का काव्य सौष्ठव एवं आस्था और विश्वास** 41-60

3.1. अज्ञेय का काव्य सौष्ठव 41

3.2. अज्ञेय की अनुभूतिगत विशेषताएँ 41

3.3. अज्ञेय की अभिव्यक्ति सम्बन्धी विशेषताएँ 49

4. **अज्ञेय काव्य में प्रेमभाव एवं काव्य अभिव्यक्ति** 61-68

4.1 उद्देश्य 61

4.2 प्रस्तावना 61

4.3 अज्ञेय के काव्य में दार्शनिकता 62

4.4 अज्ञेय के काव्य में प्रकृति एवं प्रेम 66

4.5 सारांश 68

4.6 प्रश्नावनी 68

इकाई (Unit)

1

अज्ञेय का जीवन काव्य एवं जीवनवृत्त

संरचना

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 अज्ञेय का जीवनवृत्त एवं कृतित्व
1.4 नई कविता और अज्ञेय
1.5 अज्ञेय की काव्य प्रवृत्तियाँ
1.6 अज्ञेय के काव्य में प्रकृति चित्रण
1.7 सारांश
1.8 प्रश्नावली

1.1 उद्देश्य

इस ईकाई का उद्देश्य है छात्रों को अज्ञेय के जीवन और उनके कृतित्व से परिचित कराना। इस ईकाई में हम अज्ञेय को प्रयोगात्मक कवि के रूप में पढ़ेंगे जो छायावाद और नई कविता के बीच में एक सेतु रूप हैं।

1.2 प्रस्तावना

सृष्टि में कुछ भी स्थाई नहीं है, परिवर्तन सृष्टि का नियम है, इसी प्रकार साहित्य में भी कोई एक विचारधारा सदा ही नहीं चलती है। समय के साथ सामाजिक परिस्थितियाँ बदलती है, मानवीय मूल्य बदलते हैं, और परिणाम स्वरूप विचार धाराएँ भी बदलती है। मध्ययुगीन मापदडं भी अन्ततः बदले और भारतेन्दु युग प्रवर्तक बने। उनका युग 'भारतेन्दु युग' भी कहा जाता है। इस प्रकार द्विवेदी युग की रचना पद्धित जब धीरे-धीरे बंधी बंधाई लीक पर चलने लगी तब साहित्य में अभिव्यक्ति के नए अन्वेषण खोजे जाने लगे। परिणाम स्वरूप छायावादी काव्य-चेतना उभर कर आयी जिसके अतंर्गत द्विवेदी युग अभिव्यक्ति परंपरा से हट कर कुछ नए ही आयाम निकल कर आए।

'छायावाद' की प्रतिक्रिया दो धाराएँ दर्शित होती है, पहली प्रगतिवादी कविता जो वस्तुप्रधान थी और इस संस्कृति को सर्वहारा संस्कृति भी कहते हैं, दूसरी प्रयोगवादी, जो शिल्प प्रधान है और इस हिन्दी काव्य का कलावादी आन्दोलन भी माना गया है। कुछ आलोचकों का मत था छायावादोत्वर काव्य ही नई कविता है क्योंकि इसमें प्रगतिवाद (वस्तु) और प्रयोगवाद (शिल्प) का सुंदर समायोजन है, परन्तु कुछ समीक्षकों का मत था कि नई कविता स्वतंत्र काव्य है प्रयोगवाद और प्रगतिवाद से इसका कोई संबंध नहीं है। सत्यतः नई कविता प्रायोगवाद का ही विकसित रूप है। नई कविता और प्रयोगवाद की अभिन्नता पर डा० शिवकुमार शर्मा का मत है

'कुछ विद्वानों ने प्रयोगवाद तथा नई कविता को भिन्न-भिन्न माना है, किन्तु वास्तुस्थिति यह है कि ये दोनों एक ही कविताधारा के विकास को दो अवस्थाएँ हैं। सन् 1943 से 1953 तक कविता में जो नवीन

प्रयोग हुए नवीन कविता उन्हीं का परिमाण है। प्रयोगवाद उस कविताधारा की आरम्भिक अवस्था है और नई कविता उसका विकसित अवस्था। प्रयोगवाद के जो उन्नायक है वे ही नई कविता के कर्णधार हैं और साथ-साथ दोनों की ही काव्यगत प्रवृत्तियाँ भी समान हैं'

डा० इन्द्रनाथ मदान, डा० नामवर सिंह, डा० रामविला शर्मा, डा० देवेश ठाकुर जैसे विद्वानों ने भी को प्रयोगवाद और नई कविता को अभिन्न माना है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' जी ने प्रयोगवाद और नई कविता के संदर्भ में लिखा है

'साहित्य का पेंडुलम निरंतर हिलता रहता है। जब रोमांटिक आक्रमण जोर पकड़ता है, तब प्रतिक्रिया स्वरूप साहित्य की क्लासिक वैज्ञानिक पद्धति जोर से ऊपर आना चाहती है। जब क्लासिक्ता इतिवृत्ताम्भक होने लगती है तब रोमांटिक भाव फिर से उभरना चाहते हैं। जब हम शैली पर जोर देते हैं। तब शैली आक्रमण करती है। साहित्य की एक पीढ़ी काला रंग पसन्द करती है तो दूसरी पीढ़ी हरा रंग तो तीसरी पीढ़ी शुभ रंग और फिर सबके सब अपने रंग पर आ जाते हैं।'

आधुनिक काव्य या नई कविता में अज्ञेय का विशिष्ट स्थान है। वह उस युग के कवि थे जब हिन्दी साहित्य में छायावाद (हिन्दी साहित्य को रोमांटिक उत्थान की काव्य-धारा) प्रमुख युगवाणी रहा है। जयशंकर प्रसाद सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'निराला', सुमित्रानन्दन पतं, महादेवी वर्मा

इस काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि आत्मानुभूति को मानते थे। इन कवियों की रचनाओं में जहाँ आत्मबोध विशिष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होता था वहीं अज्ञेय को व्यक्तित्व से पृथक रख व्यक्तित्व की स्वतंत्रता पर ज्यादा जोर देते थे। उन्होंने रोमांटिक भाव-बोध में स्वाधीनता आत्मचेतना के अनुभव को जोड़ कर आधुनिक भाव-बोध की रचना की। उनकी यहीं प्रयोगशीलता प्रयोगवाद नामक काव्य-आंदोलन के प्रवर्तक के रूप में उनका परिचय कराती है।

इस इकाई में अज्ञेय की जीवनी से परिचित होते हुए हम उनको एक परिवर्तनशील, प्रगतिशील, आधुनिक कवि के रूप में अध्ययन करेंगे उनकी काव्य प्रवृत्तियाँ और उनके काव्य में प्रकृति चित्रण का अवलोचन करेगा।

1.3 अज्ञेय का जीवनवृत एवं कृतित्व

नयी कविता का बीज प्रयोगवादी कविता में निहित है।

1.4 नई कविता और अज्ञेय

हिन्दी साहित्य में सन 1951 के बाद की उन कविताओं को 'नई कविता' कहा गया है जिनमें परम्परागत कविता से आगे नए भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नए मूल्यों और नए शिल्प विधान का अन्वेषण किया गया है। छायावाद के बाद हिन्दी कविता ने जो यात्रा आरम्भ की थी, वह सन 1950-51 तक आते-आते नई कविता में ढल गई। यह अनुभूति और अभिव्यक्ति की ऐसी नई व्यवस्था थी जिसमें पूर्वप्रचलित अवधारणाओं का कोई खण्डन नहीं है, व्यक्ति या समाज संबंधि कोई दुराग्रह नहीं है, अपितु इसमें जीवन के अन्वेषण को नई दिशा है, भविष्य के प्रति आस्था है, सामायिक यथार्त का अंगीकरण है तथा नए मूल्यों के स्वीकार्य की चेष्टा है। दूसरे शब्दों में नई कविता छायावाद के प्राकृतवाद को समसामयिकता से जोड़ने का प्रयोग है। इस प्रयोग में हृदय की गूँज कम है और मन के भावों की अभिव्यक्ति ज्यादा है।

'अज्ञेय' जी का युग वह था जब समाज आधुनिकता की चौंध से प्रभावित हो रहा था, सामाजिक और व्यक्तित्व मूल्य बदल रहे थे। सन् 1940-41 के आसपास जन-जीवन में गतिरोध, दमन, महँगाई, भ्रष्टाचार, राष्ट्रीय संघर्ष आदि ने ऐसी अव्यवस्था फैला दी थी कि भारत का मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी दल अशान्त हो रहा था। असन्तोष और संवेदनशीलता ने उसे नूतन क्रांति की ओर उन्मुख कर दिया। ऐसी स्थिति में जन्म हुआ

काव्य में नई कविता का जिसमें न तो केवल छायावाद की रंगीन कल्पना था और ना ही सिर्फ प्रगतिवाद का शुष्क यर्थाथ, अपितु जिसमें प्रयोगशीलता के प्रति ललक थी, नवीन परिवर्तनों से विक्षुब्ध संवदेना को नई सौन्दर्य-दृष्टि प्रदान करने की उत्कंठा थी। इस काव्य-धारा, को 'प्रयोगवाद' नाम दिया गया जिसमें व्यक्तित्व तथा समाज की व्यवस्था के बीच के संबंधों को स्वर देने एवं उसे शुभ बनाने की लालसा थी एवं काव्य के सामाजिक महत्व की स्वीकृति का आग्रह था।

हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद का पदार्पण अज्ञेय जी के साथ हुआ और उससे जुड़ कर नई कविता सामने आई। 'अज्ञेय' जी को प्रयोगवाद का प्रवर्तक एवं नई कविता का शलाका पुरुष होने का गौरव प्राप्त है। सन 1943 में 'अज्ञेय' जी के संपादन में 'तार सप्तक' के प्रकाशन से ही प्रयोगवाद का प्रारंभ हुआ। -तार सप्तक' में संकलित कवि, गजानन माधव मुक्तबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, रामविलास शर्मा एवं अज्ञेय यथार्थवादी है एवं भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को स्वीकारते हैं। तार सप्तक के विषय में डा० राजेन्द्र प्रसाद लिखते हैं—'तार सप्तक' की कविताओं के संदर्भ में यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि उसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रवृति है—व्यक्ति और समाज से जुड़े युग-यथार्थ की अभिव्यक्ति'

सन् 1951 में 'अज्ञेय' जी के सम्पादन में 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ। 'अज्ञेय' जी के द्वारा इस सप्तक के प्रकाशन से ही प्रयोगवाद के स्थान पर 'नई कविता' नाम प्रतिष्ठित हो गया। इस सप्तक से ही नई कविता की व्यापक चेतना का संकेत मिलने लगा था। 'तार सप्तक' की कविताओं में प्रतिबिम्बित मानसिक संघर्ष भय, संत्रास के विपरीत 'दूसरा सप्तक' की कविताओं में एक नए व्यक्तित्व की खोज थी जो अखण्ड, अंकुण्ति, सत्यवादी, स्वाभिमानी और जो आत्मिक शान्ति प्रदान करने वाला था। डा० देवराज के अनुसार

'दूसरा सप्तक' के कवि सिद्धांत स्थापनाओं के प्रति भले ही आग्रही न रहे हों, उन्होंने अपने परिपार्शिव जीवन को पास से देखना है। उनकी कविता का विषय वह व्यक्ति है जो गरीबी भूख और बेरोज़गारी से घिरा है, जिसका जीवन युद्ध के भय और अशिक्षा से पीढ़ित हैं, जो पत्नि और बच्चों से भरे परिवार में अकेला है और जो स्थितियों की व्यर्थता को भोग रहा है।'

'दूसरा सप्तक' में जिन कवियों की रचनाएँ संकलित है वे हैं—

भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरि नारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती।

'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के आठ वर्ष उपरान्त, सन् 1959 में 'अज्ञेय' जी के संपादन प्रतिनिधित्व में 'तीसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ। नई कविता के विकास में 'तारसप्तक' एवं 'दूसरा सप्तक' की तरह 'तीसरा सप्तक' का भी विशेष योगदान जहाँ 'तार सप्तक' एवं 'दूसरा सप्तक' ने कविता को यथार्थवाद से जोड़ने कर उसे नई कविता का प्रयास आरम्भ किया था वहीं, 'तीसरा सप्तक' नई कविता के लिए एक सुदृढ़ आधार था। इसी से नई कविता को एक अनुकूल दिशा मिली ओर उसकी सभी विशेषताएँ आलोकित हुई। तीसरा सप्तक प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, सिंह, कुँवर नारायण, विजयदेव नारायण साही एवं सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं का संकलन है। डा० मजू त्रिपाठी के अनुसार 'तीसरा सप्तक' का महत्व मूलरूप में दो कारणों से है, प्रथम तो नई कविता के डगमगाते पैरों को स्थिरता देकर टिकाना क्योंकि अस्वीकृत मूल्यों की कविताओं का यहाँ से उद्‌भव दिखाई देता है तथा दूसरी ओर कविता के प्रतिमानों की खोज भी यहीं से आरम्भ हुई, इसी सप्तक से कवि गण एक दूसरे के एवं स्वयं के आलोचक बने'।

'तीसरा सप्तक' को हम नई कविता के विकास का तीसरा चरण भी कह सकते हैं। 'तीसरा सप्तक' के बीस साल बाद सन् 1979 में 'अज्ञेय' जी द्वारा 'चौथा सप्तक' का भी प्रकाशन हुआ जिसने नई कविता को एक नवीन धारा दी।

नई कविता के विषय में अज्ञेय जी का अपना वक्तव्य है—

'नई कविता की प्रयोगशीलता का पहला आयाम भाषा से संबंध रखता है।'

वस्तु, भाषा और रूप की नवीनता 'अज्ञेय' जी कविताओं की विशेषता थी। ये अंतर्वस्तु और भाषा के ताने-बाने में बुनी उसकी कविता पाठक समग्र ही ग्रहण करता है। उनकी यही काव्य विशेषता उनकी कविता को आधुनिक कविता का बोध कराती है, जो पूर्व प्रचलित काव्य-विधान से पृथक है।

उनकी कविता 'कलगी बाजरे की' उदाहरण है कि प्रचलित 'छायावाद' से उनकी कविता कहाँ निम्न हैं—

'अगर मैं तुमको लाती साँझ के नम की अकेली तारिका अब नही कहता
या शरद के भोर की नीहार-हाथी कुँई,
कली कली चप्पे की, वगैरह, तो
नही कारण कि मेरा हृदय उथला या सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है
बल्कि केवल यहाँ ये उपमान मैले हो गए हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।

'अज्ञेय' जी की काव्य विशेषताएँ हम आगे की इकाईयों में पढ़ेगें। उनकी कविताओं को समझने के लिए शाब्दिक अर्थ जानने से ज्यादा जरुरी है पूरी कविता के प्रभाव को ग्रहण करना।

रामस्वरूप चतुवेर्दी, जो अज्ञेय काव्य के मुख्य आलोचकों में से एक है, के अनुसार 'प्रयोगवाद में अज्ञेय के माध्यम से काव्य भाषा का का पुनसुर्जन आरम्भ होता है। भाषा का अधिक से अधिक सतर्क और सृजनात्मक प्रयोग करके ही अज्ञेय ने अपनी रचना को इतना निखारा है। भाषा जितनी सृजनात्मक होगी कलाकृति उतनी ही विशुद्ध और प्रमाणिक होगी।'

1.5 अज्ञेय : जीवन वृत्त एवं कृतित्व

जीवन परिचय—हिन्दी के पहले विश्व चरित्र अज्ञेय जी का पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन है। इनका जन्म 7 मार्च 1911 को कुशीनगर में हुआ। कुशीनगर महात्मा गौतम बद्ध की निर्वाण स्थली और वहीं इस सद्, चित, आनंद से व्यक्तित्व के जीवन का सूर्योदय हुआ। इनके पिता हीरानंद वात्सयायन पुरातत्व विभाग में उच्च पदाधिकारी थे जो उस समय खुदाई शिविर में रह रहे थे। सच्चिदानदं हीरानंद वात्स्यायन को उपनाम कथा साहित्य के पितामह मुंशी प्रेमचंद जी द्वारा दिया गया, जो उस समय 'हंस' पत्रिका के सम्पादक थे।

अज्ञेय जी का बचपन अपने पिता के साथ श्रींनगर, लाहौर, पटना, नालंदा, लखनऊ, बड़ौदा, मद्रास आदि में बीता। फलस्वरूप इनकी शिक्षा भी व्यवस्थित रूप से किसी एक जगह नही हुई। इन्होंने 1925 में पंजाब से हाईस्कूल तथा मद्रास से इंटर की परीक्षा विज्ञान विषयों में उत्तीर्ण को। सन् 1925 में इन्होंने लाहौर से बी० एस० सी की परीक्षा उत्तीर्ण की। साहित्यिक प्रवृति होने के कारण इन्होंने स्वाध्याय से संस्कृत और अंग्रेजी भाषा और साहित्य का भी अच्छा ज्ञानार्जन किया। 1929 में के उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० में दाखिला लिया परन्तु क्रांतिकारी गतिविधियों में हिस्सा लेने के कारण उनकी पढ़ाई पूरी नहीं हो सकी।

1.5.2 क्रांतिकारी जीवन

सन् 1925 में अज्ञेय जब पंजाब में हाईस्कूल कर रहे थे तभी जलियावाला बागकाण्ड हुआ था। इस घटना से उनके मन में अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति विद्रोह की भावना ने जन्म लिया। सन् 1929 में 'अज्ञेय' जो चंद्रशेखर आजाद, सुखदेव, भगवती चरण जैसे क्राँतिकारियों के सम्पर्क में आए। सन् 1930 में जब

क्रांतिकारियों ने भगत सिंह को जेल से छुड़वाने की योजना बनाई, तब उसमें 'अज्ञेय' जो भी सम्मिलित थे। सन् 1930 में क्रांतिकारियों ने दिल्ली-हिमालयन-टॉचलेट्स फैक्ट्री में बम बनाने का कारखाना स्थापित किया एवं अमृतसर में पिस्तौल और कारतूस भरने का कारखाना स्थापित किया। इन दोनों कारखानों में मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार 'अज्ञेय जी' थे। नवम्बर 1930 में 'अज्ञेय' जी अमृतसर से मोहम्मद बक्श के छद्म नाम से गिरफ्तार हो गए।

'अज्ञेय' जी की क्रांतिकारी यात्रा 1929 से आरम्भ हो कर 1936 तक चली। इस अवधि में कई बार जेल गए। यह अवधी उनके घोर आत्ममन्थन, शारीरिक यातना और स्वप्न भंग की पीढ़ा की अवधि रही। दिल्ली जेल में बंद उन्होंने छायावाद से मनोविज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र और कानून जैसे विषयों का अध्ययन किया। यही वह समय था जब उनके पिता सेवानिवृत हुए थे और उन्होंने अपनी माता जी और छोटे भाई को खोया था। सन् 1929 से सन 1939 तक की अवधि 'अज्ञेय' जी के लिए अत्यंत कष्टपूर्ण दु:खद और आत्ममंथन को अवधि थी। सन 1925 से जो अंग्रेजी साम्राज्य विरोधी चिंगारी उनके मन में जन्मी थी वह अब ज्वलन्त अग्नि का रूप ले चुकी थी। इस अग्नि ने उनके स्वभाव और उनकी रचनाओं पर अमिट छाप छोड़ी है। 'चिन्त' और 'शेखर' जैसी रचनाओं में और उनकी कविताओं में इस विद्रोह की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। इनके क्रांतिकारी जीवन ने उनके विचारों के सम्पूर्ण प्रवाह को ही बदल दिया।

1.5.3 कार्य क्षेत्र

सन् 1936 में 'अज्ञेय' जी आगरा में 'सैनिक' के सम्पादक मण्डल से जुड़े और पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्होंने पदार्पण किया। 1936-37 में उन्होंने 'सैनिक' और 'विशाल भारत' नामक पत्रिकाओं का सम्पादन किया। 'विशाल भारत' से जुड़कर 'अज्ञेय' जी ने मेरठ में साहित्य परिषद करने के लिए प्रयत्नशील रहे। सन 1939 में उन्होंने रेडियो में नौकरी कर ली। सन् 1943 से 1946 तक उन्होंने सेना में भर्ती होकर सैनिक जीवन व्यतीत किया और इस कारण उनकी साहित्यिक यात्रा अवरुद्ध हो गई। 1949 में 'प्रतीक' के माध्यम से वे फिर से साहित्य से जुड़े। 'प्रतीक' के प्रकाशन में अज्ञेय जी को बहुत अधिक आर्थिक हानि उठानी पड़ी, परिणाम क्षतिपूर्ती के लिए 1950 में वे पुन: रेडियो में आ गए। सन 1943 से 1959 तक 'अज्ञेय' के सम्पादन में 'तार सप्तक', 'दूसरा सप्तक' एंव 'तीसरा सप्तक' प्रकाशित हुई जिससे काव्य की नवीन धारा 'नई कविता' का जन्म हुआ।

सन् 1955 में 'यूनेस्को' के आमंत्रण पर अज्ञेय जी पहली बार पश्चिम यूरोप की यात्रा पर गए। वहाँ से वे जापान और फिलीपींस गए। अपनी इन यात्राओं में 'अज्ञेय जी' का परिचय अनेक कवियों, लेखकों और चिंतकों से हुआ। वहाँ के साहित्य और काव्य परम्परा से वे परिचित हुए। 1960 में वे पुन: यूरोप यात्रा पर गए। उन्होंने एक महीने तक 'पिचरे द क्वीयर' मठ में निवास किया। सन 1961 में वे केलिफोर्निया विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के अध्यापक नियुक्त हुए। 1966 में 'अज्ञेय' जी को रुमानिया, युगोस्लाविया, रुस तथा मंगोलिया का भ्रमण करने का अवसर मिला।

1965 में 'अज्ञेय' जी 'दिनमान' के सम्पादक बने जो उन्होंने शीघ्र ही छोड़ दिया। तत्पश्चात वे जोधपुर विश्वविद्यालय में आचार्य पद पर नियुक्त हुए। आचार्य पद को छोड़ कर 'अज्ञेय' जी ने 'नवभारत टाइम्स', अग्रेजी पत्र 'वाक्' और 'एवरीमस' जैसी प्रसिद्धि पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन कार्य सम्हाला। 1980 में उन्होंने वत्सलनिधि नामक एक न्यास की स्थापना की जिसका उद्देश्य साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कार्य करना था। 4 अप्रैल 1987 को दिल्ली में उनकी जीवन यात्रा समाप्त हो गई।

सन् 1964 में 'आँगन के पार द्वारा' पर उन्हें 'साहित्य अकादमी' का पुरस्कार प्राप्त हुआ और 1978 में 'कितनी नावों में कितनी बार' पर उन्हें 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

1.5.4 वैवाहिक जीवन

'अज्ञेय' जी ने अपने मित्र बलराज साहनी के मनाने पर उनकी मित्र सन्तोष से विवाह किया जिसकी परिणिति तलाक में हो गई। तलाक के चौदह वर्ष बाद सन् 1959 में अपने माता-पिता के विरोध के बाद भी कपिला मलिक से विवाह कर लिया। वे दोनों तेरह साल तक साथ रहने के उपरान्त अलग हो गए यद्यपि उन्होंने औपचारिक रुप से तलाक नहीं लिया। कपिला जी अपने नाम के आगे अभी भी वात्स्यायन लगाती रहीं।

कपिला जी से अलग होने के बाद 'अज्ञेय' जी इला डालमिया के साथ रहने लगे जो उम्र में उनसे चौतीस वर्ष छोटी थी। 'अज्ञेय' जी इला जी को बेटी या बेटे समान कहते थे, लेकिन उन्होंने कभी भी इस सम्बन्ध को औपचारिक रूप से प्रचारित नहीं किया। दोनों ने ही इस संबंध को होम पूर्वक निभाया।

1.5.5 व्यक्तित्व

'अज्ञेय' जी 'नई कविता' की श्रेणी के कवियों में सबसे व्यक्तित्व के धनी थे। जयशंकर प्रसाद जी के बाद बहुमुखी प्रतिभा में सम्पन्न कलाकार यदि कोई दूसरा है तो वे 'अज्ञेय' जी हैं। साहित्येत्तर विषयों मे भी 'अज्ञेय' जी की रुचियाँ अनगिनत हैं। 'अज्ञेय' जी ने तार सप्तक में स्वयं स्वीकार किया था कि उनकी रुचियाँ बहुमुखी हैं—

खासकर उन बातों में जिससे तत्काल कोई वास्ता न हो। वैसे चित्रकला, मूर्तिकला, फोटोग्राफी, मनोविश्लेषण, और डाक्टरी का ज्ञान है या फिर नदी नालों और पहाड़ी झीलों के आसपास भटकने का उनका यह कथन उनकी यायावर प्रवृति को भी दर्शाता है।

'अज्ञेय' जी अर्न्तमुखी स्वभाव के व्यक्तित्व थे। अकेले रहने का उन्हें अधिक ही अभ्यास रहा है। अपने अतंर्मुखी स्वभाव के कारण उनमें आत्मचिंतन और आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति अति महत्वपूर्ण थी। उनकी साहित्यिक मुद्रा भी अति संयमित थी। आलोचना-प्रत्यालोचना उनकी भाषा तार्किक और संयमित रहती थी और वे इन बहसों को कभी भी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनाते थे।

'अज्ञेय' जी का सम्पूर्ण जीवन शब्दों के माध्यम से जीवन के शाश्वत 'सत्य' की खोज को समर्पित था। उनकी अनवरत साहित्य साधना इस तथ्य को सार्थक भी करती है। युगोस्लाविया में जब 'अज्ञेय' जी को अंतराष्ट्रीय साहित्य पुरस्कार 'स्वर्णमाल' से सम्मानित किया गया तब उन्होंने इन पंक्तियों की रचना की

'लेकिन फिर आउँगा मैं भी
लिए झोली में अग्नि बीज
कवि गाता है गाता है बह अन्ध
सनातनजयी।

'अज्ञेय' जी का अन्तर्मुखी स्वभाव, उनकी यायावर प्रवृत्ति, उनकी सयंमित भाषा उनकी रचनाओं में स्पष्ट प्रतिबिम्बित होती है।

1.5.6 कृतित्व

कविता संग्रह—'अज्ञेय' जी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व थे। काव्य-कला को माध्यम बनाकर उन्होंने विविध-क्षेत्रों में अद्‌भूत एवं अनुपम ग्रन्थों की रचना की। अज्ञेय ने जब लिखना आरम्भ किया तब हिन्दी में अनेक काव्य धाराएँ प्रवाहमान थीं। उन्होंने सर्वथा नवीन मार्ग का अन्वेषण किया। उनके लगभग पन्द्रह कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—

1. भग्नदूत (1933)
2. चिंता (1942)

3. इत्यलम (1946)

4. हरी घास पर क्षण भर (1949)

5. बावरा अहेरी (1954)

6. इन्द्रधनुष रौंदे हुए थे (1957)

7. अरी ओ करुण प्रभामय (1959)

8. आँगन के पार द्वार (1961)

9. सुनहले शैवाल (1965)

10. कितनी नावों में कितनी बार (1967)

11. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1969)

12. सागर मुद्रा (1970)

13. पहले में सम्राट बुनता हूँ (1973)

14. यहाँ वृक्ष के नीचे (1970)

15. नदी की नोक पर छाया (1982).

कहानी संग्रह—'अज्ञेय' जी कुशल कवि होने के साथ-साथ उच्चकोटि के कहानी-लेखक भी थे। उनके छ: कहानी-संग्रह अभी तक प्रकाशित हो चुके हैं—

1. विपथगा (1937)

2. परम्परा (1944)

3. कोठरी की बात (1945)

4. शरणार्थी (1949)

5. जयदोल (1951)

6. ये तेरे प्रतिरुप (1961)

इसके अतिरिक्त 1975 में इनकी सम्पूर्ण कहानियाँ दो भाग में प्रकाशित हुईं।

उपन्यास—'अज्ञेय' जी केवल कवि या कहानी रचियता ही नहीं थे, वे कुशल उपन्यासकार भी थे। उनके चार उपन्यास प्रकाशित हो चुके है—

1. शेखर : एक जीवनी, भाग 1 (1941)

2. शेखर : एक जीवनी, भाग 2 (1944)

3. नदी के द्वीप (1952)

4. अपने-अपने अजनबी (1961)

इन उपन्यासों में विशिष्ट जीवन-दर्शन है, प्रेमकथा है, और आत्मान्वेषण का प्रयत्न भी किया गया है। ये सभी उपन्यास मनोवैज्ञानिक चित्रण के साथ-साथ नूतन शिल्प-विधान के भी ज्वलन्त उदाहरण हैं।

निबन्ध संग्रह एवं पत्र—अज्ञेय जी की निबन्ध संग्रह एवं पत्र जो अबतक प्रकाशित हो चुके हैं वे निम्न हैं—

1. त्रिशंकु

2. आत्मनेपद

3. हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य
4. सब रंग और कुछ राग
5. भवन्ती
6. अंतरा
7. लिखि कागद कोरे
8. जोग लिखी
9. अद्यतन
10. आल-बाल
11. संवत्सर इत्यादी

यात्रावृतान्त—'अज्ञेय' जी यायावर प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। वे जहाँ भी जाते वहाँ की संस्कृति, साहित्य एवं चिंतन से परिचित होने का प्रयास करते थे। अपनी भिन्न-भिन्न यात्राओं में वे अनेक कवियों लेखकों और चिंतकों से मिले और वहाँ के साहित्य और काव्य परम्परा से परिचित हुए। उनके दो यात्रा वृतान्त प्रकाशित हो चुके हैं

1. अरे यायावर रहेगा याद (1953)
2. एक बूँद सहसा उछली (1960)

इन दोनों वृतान्त में इनकी देश-विदेश की यात्राओं के बहुत ही रोचक एक जीवन्त संस्मरण है।

सम्पादित ग्रन्थ—'अज्ञेय' जी के कुशल सम्पादन में अनेक ग्रन्थ-संग्रह प्रकाशित हुए—

1. तार सप्तक (1943)
2. नेहरु अभिनन्दन ग्रंथ (1949)
3. दूसरा सप्तक (1951)
4. नए एकांकी (1952)
5. हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ (1952)
6. तीसरा सप्तक (1959)
7. पुष्कारिणी : कविता संग्रह (1959)
8. रुपाम्बरा (1960)

इसके अतिरिक्त 'अज्ञेय' जी ने होमवती स्मारक संग्रह तार सप्तक चौथा भाग, बाद की पीढ़ियों के चयनित कवियों की शृंखला आदि का भी सम्पादन किया।

प्रतिभा सम्पन्न 'अज्ञेय' जी की एक प्रतिभा यह भी थी कि वे कुशल अनुवादक भी थे। उन्होंने 1944 में शरतचन्द के उपन्यास 'श्रीकान्त' का और 1946 में जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' का अंग्रेजी में अनुवाद किया उन्होंने 1967 में उत्तर प्रियदर्शि नामक गीति नाटक की भी रचना की।

1.6 अज्ञेय के काव्य में प्रकृति चित्रण

'अज्ञेय' जी को आरम्भ से प्रकृति के प्रति गहरा लगाव रहा है। अपनी 'आत्मकथा' में उन्होंने लिखा है—

'दुनिया में इतना कुछ देखने को पड़ा है क्षण-क्षण परिवर्तित प्रकृति वेश जिसे उसने आँख भर देखा। इसे देखने से उसको इतना अवकाश कहाँ कि वह निगाह अपनी ओर मोड़े वह तो जितना कुछ देखता है उससे भी आगे बढ़ने की विवशता में देता है मन को दिलासा, पुन: आऊँगा भले ही बरस दिन अनगिनत युगों के बाद।'

'अज्ञेय' जी का बचपन से ही प्रकृति के साथ एक.अटूट संबंध रहा है। पिता पुरातत्व विभाग में थे इस कारण उनका अधिकांश बचपन एकांत में प्रकृति के सानिध्य में बीता। इस तथ्य को अज्ञेय जी ने स्वयं स्वीकार किया हैं—

'एकांत मैं बहुत रहा-जंगल में छोटी जगहों में - जहाँ पर्यवेशण की अपार सुविधाएँ मिली। इसलिए बहुत सी चीजों को खासकर प्रकृतिक परिवेश को मैने ज्यादा बारीकों से देखा और अनुभव किया है।'

यह सत्य है कि व्यक्ति जिस परिवेश में रहता है उससे सर्वाधिक प्रभावित होता है। 'अज्ञेय' जी की संबंध में भी यह सत्य है। प्रकृति के एकांत साहचर्य ने उन्हें नितान एकांतवासी बना दिया।

'अज्ञेय' जी नगर के कोलाहल से दूर प्रकृति में शरण चाहते थे, क्रत्रिमता से मुक्त सहज जीवन के वे आकांक्षी थे। अपनी कविता 'हरी घास पर क्षण भर' में वे कहते हैं

'हो प्राकृतस्थ: तनो मत कटी-छँटी उव बाड़ सरीखी नमो, खुल खिलो, सहज मिलो
अंत: स्मित, अंत-संचत हरी घास सी।
क्षण भर भुला सकें हम
नगर की बेचैन बदकती गड्ड-मड्ड अकुलाहट
और न मानें उसे पलायन;
क्षण भर देख सकें आकाश, धरा दूर्वा, मेघाली,
पौधे लता दोलती, कूल, झर पत्ते, तितली-मुनगे,
कुनगी पर पूँछ उठाकर
डटाती छोटी सी चिड़िया'

'अज्ञेय' जी अपनी कविता की एक पूरी चित्र-शृँखला बनाते हैं, जिसमें पशु, पक्षी, मनुष्य और पूरी प्रकृति सम्मिलित है और इसके माध्यम से वे हमें मुक्ति और साहित्य खुले वन के बोध की और ले जाते हैं।

'अज्ञेय' जी के काव्य में प्रकृति चित्रण का हम विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत विशलेषण करेंगे—

1. प्रकृति का विस्तृत दायरा

प्रकृति और साहित्य का साथ सदा ही रहा है। कालीदास, तुलसीदास, वाल्मीकि आदि कवियों ने प्रकृति के विभिन्न रुपों का चित्रण किया है। 'अज्ञेय' जी ने प्रकृति-चित्रण के विभिन्न प्रकार के रूपों का चित्रण किया है। उन्होंने पर्वत से सागर तक, आकाश से धरती तक फूलो से पंछियों तक, शहर से ग्राम तक सम्पूर्ण प्रकृति को अपने काव्य में इतनी सुंदरता से उकेरा है कि उनकी कविताएँ एक सम्पूर्ण चित्र-शृँखला सी बनती प्रतीत होती हैं उदाहरणत: 'हरी घास पर क्षण भर'

'क्षण भर अनायास हम याद करें:
तिरती नाव नदी में,
धूर धूल-भरे पथ पर आसाढ़ की भनक, झील के साथ तैरना,
हँसी अकारण खड़े महा-वट की छाया में,

बदन घाम से लाल, स्वेद से जमी अलक-लट,

चीड़ों का बन, साथ-साथ दुलकी चलते दो घोंड़े,

गीली हवा नदी की, फूले नथुने, भर्रायी सीटी स्टीमर की,

खंडहर, ग्रथित अँगुलियाँ, बाँसे का मधु, डाकिये के पैरो की चाँप,

अधज्ञानी बबूल की धूल मिली-सी गंध,

झरा रेशम शिरिष का, कविता के पद

मसजिद से गुम्बद के पीछे सूर्य डूबता धीरे-धीरे,

झरने के चमकीले पत्थर, मोर-मोरनी, घुँधरु,

सन्थाली झूमर का लम्बा कसक भरा आलाप,

रेत की आह की तरह धीरे-धीरे खिंचना, लहरें, आँधी-पानी;

नदी किनारे की रेती पर बित्ते-भर की छाँह झाड़ की,

अंगुल-अंगुल नाप नाप कर तोड़े तिनकों का समूह, लू, मौन।

अज्ञेय जी को पहाड़ भी उतना प्रिय है जितना सगार। उन्होंने एक जगह लिखा है कि वे हिमालय के पास भी रहना चाहते हैं, पर सागर की गर्जन से दूर भी नहीं रहना चाहते। जिस प्रकार 'चिकोलस रोरिन' ने प्रकृति के प्रागंण में से हिमालय को चुना, 'अज्ञेय' जी ने पर्वत और सागर दोनों की ही चुना। पहाड़ी यात्रा, पूर्वांचल, नन्दादेवी शीर्षक के अन्तर्गत कई कवितएँ स्पष्ट रूप से पर्वत से सबंधित हैं, तो 'सागर मुद्रा' में संग्रहित 14 कविाएँ, सागर से संबंधित हैं।

2. प्रकृति की मानवीय आभा

'अज्ञेय जी' का महत्व प्रकृति को नई अभिव्य के साथ प्रस्तुत करने का है। 'अज्ञेय' जी और प्रकृति का साथ तो माता, सखा आदि रूप से रहा है। उन्होंने प्रकृति के अनेक उपदानों को जैसे फल-फूल, घास-फूस, पेड़ पौधे, पशु-पक्षी, नदी, सागर, रात-दिन आदि, न केवल उपमा के रूप में प्रयोग किया है अपितु वे प्रकृतिक उपदानों के साथ अपने सुख-दुख बाँटते प्रतीत होते हैं। प्रकृति उनकी बंधु है और वह उनके लिए व्यक्ति से बढ़कर है। बंधु है नदियाँ वे कहते हैं–

बंधु है नदियाँ प्रकृति भी बंधु है

और क्या जाने, कदाचित

बंधु

मानव भी!

उक्त पंक्तियाँ दर्शाती हैं कि 'अज्ञेय' जी के लिए प्रकृति ज्यादा उनकी अपनी है विश्वसनीय है। उनकी कविता में प्रकृति का 'मानवीकरण' स्पष्ट रूप से चित्रित होता है। उनकी कवितओं में प्रकृति कभी लाती, तो कभी खिलखिलाती है। 'बसंत गीत' कविता ये प्रकृति की मानव सुलभ चेष्यओं का जीवतं चित्रण है।

'पीपल की सूखी खल स्निग्ध हो चली

सिरसि ने रेशम से वेणी बाँध ली

नीम के भी बौर में मिठास देख

हँस उठी है कचनार की कली

टेसुओं की आरती सजा के

बन गई वधु वनस्थली'

'अज्ञेय' जी ने अपनी कविताओं में अपनी भावनों का भी रोपण किया है। अभावग्रस्त कवि को सांझ भी सूनी सी प्रतीत होती है–

'सूनी सी साँझ एक

दबे-पाँव मेरे कमरे में आई थी

मुझको भी वहाँ देख

थोड़ा सकुचाई थी।

3. ऐन्द्रिय बोध

'अज्ञेय' जी में अद्‌भुत प्रकृतिक सौंदर्यनुभूति है। उनमें छायावादी प्रकृति काव्य की सभी विशेषताएँ है, चाहे वह केन्द्रीय बोध हो, सांगीतिक सूक्ष्मता हो, विशेषण विपर्याय हो गहन संवेदनशीलता, अधिक विकसित रूप में मिलती हैं। उनमें निराला की शब्द चेतना है और सांगीतिक स्वर बोध तथा पंत का रंग बौध, ध्वनिबौध गंध बोध है। यह कथ्य 'अंतिम आलोक' कविता की पंक्तियों में दृष्टिगोचर होता हैं।

'संध्या की किरण परी ने अरुण पंख दो खोले

कंपित-कर गिरि शिखरों के उर-छिपे रहस्य खोले

देखी उस अरुण किरण ने कुल पर्वत-माला श्यामल

बस एक श्रंग पर हिम का था कंपित कंचन झलमल।'

इस कविता की पंक्तियों में संध्या परी, अरुण पंख, गिरि-शिखरों, अरुण किरण आदि शब्दों के प्रयोग से कविता में लयात्मकता प्रतीत होती है

एक और उदाहरण देखिए जहाँ कवि ने रूप-रंग, ध्वनि, गंध और स्पर्श से संबंधित ऐन्द्रिय बोध का बहुत बारीकी से चित्रण किया है–

'लाल अंगारे से डह-डह इस

पंचमुख गुड़हल के फुल को

बाँधते रहो नीख'

उक्त पक्तियों में गुड़हल के फूल की रंग-योजना बहुत ही सटीक। लाल अंगारे से दहकता गुड़हल का फूल कवि को अनायास नहीं अपनी और आकर्षित करता है।

प्रकृति के ध्वनि बिम्बों का चित्रण उनके अनेक काव्य में अभिव्यक्त हुआ है। वह ओस के टपकने के किए टिप्-टिप् का प्रयोग करते हैं तथा पहाड़ी काक की डाक के लिए हाक्-हाक् का प्रायोग करते हैं। इस प्रकार उनकी कविता ऐन्द्रिय बोध को वैशिष्टि अभिव्यक्त करती हैं।

4. प्रेम व आसक्ति

'अज्ञेय' जी को प्रकृति के प्रेमासक्ति रूप ने अधिक प्रभावित किया है। बंसतगीत, सावन-मेघ, सागर के किनारे चांदनी जी लो आदि कविता में कवि की यही संवेदानाएँ अभिव्यक्त है। 'अज्ञेय' जी 'हरी घास पर क्षण भर' कविता में कवि ने प्रेमासक्त मन को हरी घास की उपमा दी है जो सदा और रति आमत्रंण लिए बिछी रहती है

"आओ बैठें

इसी ढाल की हरी घास पर।

माली चौकीदारों का यह समय नहीं है,

और घास तो अधुनातन मानव-मन की भावना की तरह

सदा बिछी है-हरी त्योताती, कोई आ कर रौंदे।"

इस प्रणयासक्ति में कवि को अपने और प्रेमिका के मध्य शिष्टाचार को कोई भी असहनीय है। उन दोनों मध्य कुछ हो तो बस प्रेम

"आओ बैठे

तनिक और सटकर, कि हमारे बीच स्नेह-भर का व्यवधान रहे, बस,

नहीं दरारें सभ्य शिष्ट जीवन की।"

'अज्ञेय' जी की कविताओं में प्रेमासक्ति के साथ कहीं-कहीं आलंबन रूप का भी चित्रण मिलता हैं। 'इत्यलम' की कविता 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' कवि ने अपने जीवन को प्रकृति से जोड़ा है। जिस प्रकार सूखी प्रकृति हरियाली के लिए वर्षा पर आश्रित रहती है, इसी प्रकार कवि भी अपने जीवन में परिवर्तन के लिए प्रेम वर्षा पर आश्रित है।

"घन आकास में दीखा।

चार दिनों के बाद वह आएगी

मुझ पर छा जाएगी, सुखी रेतीली धमनी में फिर

रस-धारा लहराएगी।"

मिलन की ब्रीव्र आकांक्षा की अभिव्यक्ति के लिए 'अज्ञेय' जी का प्रकृति पर आलंबन उनके काव्य में प्रचुरता में मिलता है। इस प्रकार 'अज्ञेय' जी की कविताओं में प्रकृति प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है।

5. वैज्ञानिक एवं दार्शनिक चिन्तन

'अज्ञेय' जी प्रकृति और मानव के संबंधों के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते हैं। पुराने कवि जहाँ वायु को शीतलता से जोड़ते हैं, वहीं 'अज्ञेय' जी वायु को आशावाद का प्रतीक मानते हैं–

"मरण धर्म है सभी कुछ किन्तु फिर भी बहो, मीठी हवा,

जीवन की क्रियाओं को तुम्हीं तो तीव्र करती हो!

बहो, मीठी हवा, तुम बहती रहो,

पगली हवा, गति बढ़े जीवन की"

संसार की नश्वरता का उल्लेख करते हुए 'अज्ञेय' जी वायु को जीवन की क्रियाशीलता से जोड़ते हैं। उक्त पंक्तियों में 'अज्ञेय' जी की जीवन (–) दर्शन भरे प्रतिबिम्बित होता है। यद्यपि मृत्यु शाश्वत सत्य है तदापि जीवन की गतिशीलता अवश्यमभावी है। वे हवा से निरंतर बहने का अनुरोध करते हैं क्योंकि हवा ही जीवन गति का प्रतीक है।

6. परिवेश चित्रण

अपनी कविताओं में 'अज्ञेय' जी ने आधुनिक जीवन में प्रकृति के सानिध्य को महत्व दिया है। अपनी कविता हरी घास पर क्षण भर में कवि कहते हैं

"हो प्राकृस्थ तनो मत उस बाड़ सरीखी

नमो, खुल खिलो, सहज मिलो

अंत: स्मित, अंत संयत हरी घास सी"

वर्तमान परिवेश में मनुष्य प्रकृति से दूर होता जा रहा है। कवि प्रकृति को जीवन के निकट अनुभव करना चाहता है इसलिए वह घास, खुल खिलो, सहज मिलो की उपमा दे रहा है। वह प्रकृति के मुक्त स्वभाव को अपने जीवन में उतारना चाहता है। 'अज्ञेय' जी के प्रकृति के साथ इस नए रिश्ते की स्थापना उनके वैज्ञानिक और प्रयोगशील दृष्टि को भी दर्शाता है।

आधुनिक नगरीय परिवेश में संघर्ष का चित्रणं 'अज्ञेय' जी ने 'सागर मुद्रा' कुछ इस प्रकार किया है—

"वहाँ एक चट्टान है

सागर उमड़ कर उससे टकराता है

पछाड़ खाता है

लौंट जाता है

फिर नया ज्वार भरता है

सागर फिर आता है।

नहीं कहीं अन्त हैं"

नगरीय परिवेश में व्यक्ति के संघर्ष का कोई अन्त नहीं है। वे कहते हैं—

"न कोई समाधान है

न जीत है न हार है

केवल परस्पर के तनावों का

एक अविराम व्यापार है"

यह संघर्ष है अपने अहं की तुष्टि का और यह एक अंतहीन तनावों का न रुकने वाला व्यापार है।

7. अलंकरण एवं उपदेशन

'अज्ञेय' जी के प्रकृति चित्रण में अलंकरण प्रचुरता में हैं। कहीं चेतना नदी रूप से अलंकृत है तो कहीं प्रोयासी बसन्त का जीवन-दूत है

तू अकाल-घन सी आई थी बन बसन्त का जीवन दूत।

नयी बूँदों में तेरा प्यार!

समृति"

इसी प्रकार भावों के आलंकारिक निरुपण के लिए भी प्रकृति के कई उपमान लाए गए हैं, जैसे उदाहरणत: बेल सी वह भेरे भीतर, रंगों से उड़ते जीवन क्षण, उल्लास मेरा घोड़ा आदी।

'अज्ञेय' जी प्रकृति के द्वारा अपनी काव्य में जीवन के उपदेश भी देते हैं। जहाँ-जहाँ कवि ने प्रकृति से कुछ ग्रहण किया है वहाँ-वहाँ प्रकृति ने मानव को कुछ सीख ही दी है।

"कहा सागर ने : चुप रहो

मैं अपनी अबाधता जैसे

सहता हूँ, अपनी मर्यादा

तुम सहो

जिसे बाँध तुम नहीं सकते

उसमें अरिवन मन बहो

मौन भी अभिव्यंजना है।

जितना तुम्हारा सच है

उतना ही कहो।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति केवल अलंकरण तक ही सीमित है वह उसका प्रत्येक अवयव मनुष्य को कुछ उपदेश देता प्रतीत होता है।

8. आलंबन

प्रकृति, कवि के सुख-दुख की साक्षी के रूप में 'अज्ञेय' जी की कविता में उभर कर आती है। अपनी भावनाओं को प्रकट करने के लिए कवि प्रकृतिक उपादानों का आलंबन लेता है। कभी उन्हें हरी घास मानवीय भावनाओं की तरह कोमल लगती है, तो कमी अन्धेरा नम से बरसता हुआ 'अंजन' प्रतीत है और कभी धूप शिशु के बदन पर माँ की हंसी सी प्रतिबिम्बित होती दिखाई पड़ती है।

''और हरी घास तो मानव-मन की भावना की तरह

सदा बिछी है- हरी-न्योताती, कोई आ कर रौंदे (हरी घास पर क्षण भर)

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

साँझ हुई सब ओर निशा ने फैलाया निज वीर

नम से अंजन बरस रहा है नहीं दीखता तीर

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

धूप

माँ की हँसी के प्रतिबिम्ब सी शिशु बदन पर हुई मासित''

'अज्ञेय' जी की सौंदर्य चेतना प्रकृति के दृश्यों को नया संदर्भ और देती है, उनका काव्य उनके सूक्ष्म सौंदर्य-बोध का परिचय कराती हैं। नामवर सिंह का कथन है—

'कुछ लोग यही जानते हैं कि प्रकृति चिड़ियो का चहचहाना कोयल की बोली है, लेकिन प्रकृति जितनी बहुंरगी है शायद किसी के पास उतने रंग नहीं, जितने प्रकृति के पास हैं। ये रंग उनकी कविताओं में मिलेगा।'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है—

'अपने ही सुख-दुख के रंग में रंगकर प्रकृति को देखा तो क्या देखा: मनुष्य ही सब कुछ नहीं है। प्रकृति का अपना रूप भी है।'

अपनी निजी भावनाओं को पृथक रखकर कवि ने कितने ही प्रकृति के चित्रों को उकेरा है।

9. याचक मुद्रा

'अज्ञेय' जी प्रकृति के समक्ष एक याचक बन कर भी आए हैं। वह प्रकृति के विभिन्न अंगों से उनकी गुणवत्ता देने की याचना करते हैं, तो कहीं वह प्रकृति से उसके स्वभाव की, उसके शील की याचना करते हैं 'कितनी नावों में कितनी बार' संग्रह में संग्रहित कविता उधार में कवि का याचक मुद्रा का सजीव चित्रण है—

"मैंने धूप से कहा : मुझे गरमाई दोगी उधार

चिड़िया से कहा : थोड़ी मिठास उधार दोगी

मैंने हरी घास की पत्ती से पूछा : तनिक हरियाली दोगी

तिनके की नोंक भर?

शंखपुषी से पूछा : उजास दोगी-

किरण की ओक भर?

मैंने हवा से मांगा : थोड़ा खुलापन – बस एक प्रश्वास,

लहर से : एक रोम की सिरहन भर उल्लास।

मैंने आकाश से मांगी

आँख की झपकी-भर असीमता-उधार।

सबसे उधार माँगा, सब ने दिया।

यो मैं जिया और जीता हूँ।"

10 रहस्यवाद के लिए रहस्योधाटन

'अज्ञेय' जी प्रकृति को रहस्य एंव गम्भीर अर्थ को उजागर करने का सशक्त माध्यम मानते हैं। उनके रहस्यदर्शन का एक उदाहरण है—

उड़ गई चिड़िया

काँपी फिर थिर

हो गई पत्ती

प्रकृति में घटी उक्त घटना के माध्यम से कवि ने गहन सत्य को उजागर किया है। कवि का तात्पर्य है कि मनुष्य के जीवन रुपी डाली पर सुख की घड़ियाँ उस चिड़िया के समान है जो क्षण भर को डाली पर आ कर बैठती है फिर उड़ जाती है। सुख के जाने से मन: स्थिति क्षण भर को विचलित होती है फिर स्थिर हो जाती है।

'इत्यलम' में संग्रहित कविता रहस्यवाद में कवि के लिए ईश्वर कोई रहस्य नहीं है अपितु वह तो असीम शक्ति है जिसका कवि एक अणु है। इसी रहस्यामयता का पर्दा खेल कर कवि उस शक्तिपुँज से सबंन्ध स्थापित करना चाहता है। यही कवि का रहस्यवाद है–

"एक असीम अणु इस असीम शक्ति को जो उसे प्रेरित करती है

अपने भीतर समा लेना चाहता है,

उसकी रहस्यामयता का परदा खोल कर उस में

मिल जाना चाहता है—

यही मेरा रहस्यवाद है।"

11. प्रकृति बोध

'अज्ञेय' जी का प्रकृति बोध उनकी कविताओं में प्रखरता से प्रतिबिम्बित है। प्रकृति के लगातार दोहन से वे विचालित भी दिखते हैं और इसकी चिंता उनकी कविताओं में भी दिखाई देती है। 'हरी घास पर क्षण भर' प्रकृति के दिन-प्रतिदिन हो रहे विनाश प्रकृति और मानव के बीच स्थापित संबंधों को भी प्राभावित किया है

जिससे प्रकृति और मानव के रिश्ते और उनके मध्य स्थापित प्रकृतिक मान्यताएँ भी बदल रही हैं। अज्ञेय जी को इस तथ्य का ज्ञान है इसलिए 'हरी घास पर क्षण भर' काव्य संग्रह की कविता सवेरे सवेरे में वे कहते हैं

"सवेरे-सवेरे नहीं आती बुलबुल,
न श्यामा सुरीली न फुटकी न दंहगल सुनाती है, बोली,
नहीं फूल सूंधनी, पतेना-सहेली लगाती हैं फेरे।
जैस ही जागा, कहीं पर अभागा अड़ड़ाता है कागा
कांच ! कांच! कांच!

निर्मन वर्मा ने 'अज्ञेय' जी के प्रकृति बोध को रेखांकित करते हुए कहा है"

'वह पहाड़ों को देखकर मुग्ध होते हैं, तो नीचे डाली में पेड़ कटने का अंतर्नाद भी सुनते हैं, यह कटने का बोध उनके प्रकृति के लगाव में एक गहरी दरार पैदा कर जाता है।'

पर्यावरण संबंधी चिंताओं को जब 'अज्ञेय' जी अपनी कविताओं में व्यक्त कर रहे थे, उस समय देश में पर्यावरण संबंधी आंदोलन सर नहीं हुए थे। 'अज्ञेय' जी की कविताओं में व्यक्त विचार आज के पर्यावरणवादी आंदोलनों के नेताओं के विचारों से आश्चर्यजनक समानता रखते हैं। इस संदर्भ में यह बात सिद्ध होती है कि एक सजग कवि युग-चेतना के पदचाप की आहट दूसरों से पहले सुन लेता है।

1.5 अज्ञेय की काव्य प्रवृत्तियाँ

'अज्ञेय' आधुनिक कविता के अग्रणी कवि हैं। उन्होंने हिन्दी कविता को एक नया मार्ग दिखाया इसलिए उनकी पहचान एक युग-निर्माता कवि के रूप में है। उन्होंने न केवल कविता को अन्वेषण की राह दिखाई अपितु उसे प्रयोग के आधार पर भी प्रतिष्ठित किया।

अज्ञेय की काव्य संबंधी प्रवृतियों का विशेलषण निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत् किया जा सकता है—

1 सत्य की खोज

अज्ञेय कविता में सत्य की खोज के लिए प्रयासरत दिखाई देते हैं। उन्होंने सत्य के अन्वेषण एवं नवीन तथ्यों की प्राप्ति के लिए स्वयं को काव्य-प्रेम की ज्वाला में जलाया है, स्वयं आहुति बन कर काव्य को नयी दिशा प्रदान की है।

'तार सप्तक' में उन्होंने खुद को सत्य की राहों का अन्वेषी माना है। वे कहते हैं—

"वे किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं है, अभी राही है—
राही नहीं, राहों के अन्वेषी"

सत्य ही 'अज्ञेय' जी को साधना है और वे सत्य के ही अन्वेषण में लगे रहते हैं। 'कितनी नावों में कितनी बार' में वे अनबूझे सत्य को कुछ इस प्रकार खोजते हैं

"कितनी डगमग नावों में बैठ कर
मैं तुम्हारी ओर आया हूँ
ओ मेरी छोटी सी ज्योति।
कभी कुहासे में तुम्हें न देखता भी
पर कुहासे की ही छोटी-सी रुपहली झलमल में

पहचाना हुआ तुम्हारा ही प्रभा-मंडल।

कितनी बार में

धीर, आश्वस्त, अक्लांत-

ओ मेरे अनबूझे सत्य! कितनी बार....."

'अज्ञेय' जी का सत्य 'व्यक्ति सत्य' न हो कर 'व्यापक सत्य है। कवि आत्मा के सत्य का अन्वेषण करना ही कविता का चरम साण्य मानते हैं।

2. तटस्थता और निर्वेयक्तिकता

'अज्ञेय' जी के काव्य में तटस्थता और निर्वेयक्तिकता की अभिव्यक्ति अपने अनेक रूपों में अभिव्यक्त होती है। 'अज्ञेय' जी के काव्य में तटस्थता और निवैयक्तिकता इलियट से प्रभावित है। इलियट के अनुसार 'कविता से परे होता है। व्यक्ति के महत्वपूर्ण उसकी धारणा और अनूभूति का कविता में कोई स्थान नहीं होता।

इलियट की मान्यता से 'अज्ञेय' जी भी सहमत है। उनका मत है-

"वास्तव में कवि का व्यक्तित्व नहीं, वह माध्यम प्रकाशित होता है जिसमें विभिन्न अनुभूतियाँ और भावनाएँ चमत्कारिक योग में युक्त होती हैं। काव्य एक व्यक्तित्व की नहीं एक माध्यम की अभिव्यक्ति है।"

शेखर : एक जीवनी में कुछ 'अज्ञेय' जी ने इस मत को कुछ इस प्रकार स्वीकार किया है—

"भोगने वाले प्राणी में रचना करने वाले कलाकार में सदा ही एक अलगाव बना रहता है। जितना ही बड़ा वह अलगाव है उतना बड़ा कलाकार होगा।"

इसके अतिरिक्त 'त्रिशकुं' और चिंता में भी 'अज्ञेय' जी ने कविता को अनुभूति से पृथक करने वाली क्रिया के रूप में स्वीकार किया है। वस्तुत: एक कलाकार की काव्यगत-कुशलता और गुणों से उसकी स्वानुभूति का विलय ही निवैयक्तिकरण है।

'असाध्य वीणा' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ प्रियांविद सम्पूर्ण राजसभा से विरक्त हो केवल वीणा में ही ध्यानचित हो जाता है तभी उसे साधने समर्थ होता है

"श्रेय नहीं कुछ मेरा

मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में

वीणा के माध्यम से अपने को मैंने

सब कुछ को सौंप दिया था—

सुना आपने जो वह मेरा नहीं,

सब कुछ की तथता थी"

3. आंतरिक दबाव

'अज्ञेय' जी का मत है रचनाकार आंतरिक दबाव से अभिप्रेरित होकर काव्य रचना करता है। रचनाकार की स्वरूप चिंतन आंतरिक प्रेरणा कतिवा की रचना के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दूसरे शब्दों में कहे तो कविता कवि के भीतर से जन्म लेती है। 'अज्ञेय' जी के अनुसार आंतरिक प्रेरणा से अभिप्रेरित रचनाकार की स्थिति स्वभावत: प्रात: जागने वाले व्यक्ति की भांति है। बाहन दबाव से रचना करते वाले कवि की स्थिति अर्लाम की चीख से प्रात: जागने वाले व्यक्ति की भांति है। 'अज्ञेय' जी ने इस आंतरिक प्रेरणा को अपनी कविता "क्योंकि मैं उसे जानता हूँ" में इन पक्तियों के माध्यम से व्यक्त करते हैं—

"मैं गाता नहीं गीत मुझमे गाया जाता है
जिसके साथ मैं नहीं साधता तानपुरा
मेरे हाथों वह सधाया जाता है।"

4. अहंवाद और स्वरति

'अज्ञेय' जी का मानना है कि रचना रचनाकार के अहं के विलयन की साधन है। 'आत्मनेपद' में उन्होंने कहा है 'अराज का कवि तो कविता के वरंच व्यक्तित्व की, व्यक्ति के अहं को प्राखरतर अभिव्यक्ति और उस अहं को पुष्ट करने वाली रचना मानता है—प्राचीन कवियों की महत्ता का असल रहस्य यही है कि वे अहं को विलीन करके लिखते थे।' सर्वश्रेष्ठ कविता के लिए, कवि के स्व का उसके अहं का उसकी कविता में विलयन अवश्यमभावी हैं 'हरी घास पर क्षण भर' कविता कोश की कविता कितनी शान्ति!

कितनी शान्ति में वे कहते हैं—

'अहं! अन्तर्गुहावासी! स्व-रति! क्या मै। चीन्हता कोरी
न दूजी राह?
जानता क्या नहीं निज में बद्ध हो कर है नहीं
निर्वाह'

साधना में साधक के अंह के विलयन का उत्कृष्ट उदाहरण है 'अज्ञेय' जी की लंबी कविता 'असाध्य वीणा' के इस दृष्टांत में। इस कविता में प्रियवंद किरीट-तरु से निर्मित वीणा को साधने में स्वयं के अन्वेषण में लगा हुआ है

"मौन प्रियवंद साध रहा था वीणा
नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था।
सघन निविड में वह अपने को
सौंप रहा था उसी किरीट-तरु को।
कौन प्रियंवद है कि दम्भ कर
इस अभिमंत्रित कठवाद्य के सम्मुख आवे?
कौन बजावे
यह वीणा जो स्वयं एक जीवन भर की साधना रही?
भूल गया था केशकंबली राज सभा को
कंबल पर अभिमंत्रित एक अकेलेपन में डूब गया था।"

यह साधक अपना सर्वस्य भूलकर वीणा में ही एकाग्रचित होने का प्रयास करता है।

अज्ञेय के लिए अतंर-चेतना ही सृजक है। कवि को लगता है कि चेतना स्तर पर जो दिखाई देता है वह सृजन के लिए पर्याप्त नहीं है। कवि अवचेतन के रहस्यों की अभिव्यक्ति चाहता है। यही उसके अहं या स्व का विलयन है।

5. क्षण की अनुमूर्ति

'अज्ञेय' जी की कविता में क्षण विशेष की अनुभूति को यथारूप प्रास्तुत करने की प्रवृत्ति है। जीवन के यह क्षण सुख-दुख आशा-निराशा, संयोग-वियोग किसी भी रूप में हो सकते हैं।

'अज्ञेय' जी के लिए अनुभूती का विस्तार नहीं, क्षण अधिक महत्वपूर्ण। 'हरी घास पर क्षण भर' में वे कहते हैं

"क्षण भर देख सकें आकाश धरा, दूर्वा, मेघाली,
पौधे, ला दोलती, फूल, झरे पत्ते, तितली-भुनगे,
फुनगी पर पूँछ उठाती कर इतराती छोटी-सी चिड़िया"

उक्त पक्तियाँ में कवि वर्तमान परिवेश से यदि क्षण भर भी प्रकृति की गोद में पलायन कर सु:ख पा सके यही उसके लिए पर्याप्त है।

6. समसामयिक जीवन का यथार्थ चित्रण

अज्ञेय की कविता प्रयोगवादी कविता है, मानवतावादी कविता है, जिसकी दृष्टि यथार्थवादी है। उनका मानवतावादी मिथ्या, आदर्श परिकल्पना पर आधारित नहीं है, अपितु वह तीखे यथार्थ को चित्रित करता है—

"चाबुक खाये
भागा जाता
सागर तीरे
मुँह लटकाये
मानों धरे लकीर
जमे खारे झागों की
रिरियाता कुत्ता यह
पूछँ लड़खड़ाती टांगों के बीच दबाये" ('जीसर' कितनी नावों में कितनी बार)

अज्ञेय आधुनिक परिवेश विघटन के संन्त्रास को कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं। इन पंक्तियों में नागरिक सभ्यता की क्रत्रिमता स्पष्ट व्युक्त होती है—

"और कितनी बार कितने जग मग जहाज
मुझे खीच कर ले गए हैं कितनी दूर
किन पराए देशों की बेदर्द हवाओं में
जहां नंगे अँधेरों का
और भी उघाड़ता रहता है
एक नंगा, तीखा निमर्म प्रकाश" (कितनी नावों में कितनी बार)

अज्ञेय ने अपने काव्य में व्यैक्तिक और सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन से उत्पन्न कुँठा को, संन्त्रास पहचाना है। उनके लिए लेखक और परिवश का विशेष महत्व है। कुछ लेखक इस परिवर्तन के आकांक्षी होते हैं, और कुछ लेखक कुँठओं के शिकार होते हैं। दोनों ही स्थितियों में लेखक सामाजिक बदलाव की माँग करता है। बदलते परिवेश एवं बदलती सामाजिक और व्येक्तिक मान्यताओं के यथार्थ का अज्ञेय ने अपने काव्य में पूर्ण सत्यनिष्ठा से चित्रण किया है।

7. व्यंग्यात्मकता

सामाजिक विडम्बानाओं के प्रति अज्ञेय का व्यंयभाव अभूतपूर्व है। भारतीय सभ्यता के टूटे-फूटे पाश्चातयकरण पर कवि अपनी 'सांप' नामक कृति में तीखा प्रहार करते हैं। वे बाहरी सभ्यता पर कुछ इस प्रकार व्यंय करते हैं—

"सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं न होगे नगर में बसना तुम्हें आया नहीं

एक बात पूँछ उत्तर दोगे

तब कैसे सीखा डसना, विष कहाँ पाया?"

8. आशा और निराशा

अज्ञेय की कविताओं में जीवन दर्शत का बहुत महत्व है जो कभी आशापूर्ण और कभी निराशाजनक है।

अज्ञेय मूलत: एक आशावादी कवि है। स्वअस्तित्व और सत्य की खोज में उनका आशावादी दृष्टिकोण में स्पष्ट प्रतिबिम्बित होता है।

अपितु अहेरी (सूर्य) से उन विफलताओं की कलौसी को मिटाने का अनुरोध करता है

"विफल दिनों की तू कलौंस पर भाँज जा

मेरी आँखे आज जा

कि तुझे देखू

देखू और मत में कृतज्ञता उमड़ आयचे

पहनूँ सिरोपे से ये कनक-तार तेरे

बावरा अहेरी।'

अज्ञेय की आस्था उनकी निम्न पंक्तियों में मुख्य होती है

'आस्था न कांपे

मानव फिर मिट्टी का भी, देवता हो जाता है"

नयी कविता के माध्यम से अपने समय की निराशा को आधुनिक कवियों ने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। सुरेश चन्द्र सहल का कथन है—

"नई कविता में निराशा का चित्रण सामाजिक, आर्थिक, विषमता, युद्ध की आंशका नैतिका के ह्रास, पारदर्शता, विवशता, विज्ञान की उन्नति के कारण औधोगिक विकास आदि के कारणों से किया जा रहा है। इस तरह से इस निराशा के द्वारा कवियों ने नैतिक मूल्यों, जीवन आदर्शों, सामाजिक यथार्थ आदि का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। नए कवियों में निराशा भी अपने काल से ही उपजी है।"

यद्यपि 'अज्ञेय' आशावादी कवि है तथापि उनकी निराशा भी कभी-कभी उनकी पक्तियों में मुखर होती है।

"सुख मिला, उसे हम कह न सके

संस्परी वृहत् का मिला सुरसुरी सा

हम बन न सके

यो बीत गया सब, हम मरे नहीं, पर हाय। कदापि हम जीवित भी रह न सके।"

कृष्णदत्त पालीवाल ने अज्ञेय के चिंतन एंव रचना के विषय में लिखा है—

"अज्ञेय उन इने-गिने भारतीय रचनाकारों में से एक हैं जिन्होंने बीसवी शताब्दी में भारतीय संस्कृति, भारतीय परम्परा, भातीय आधुनिकता के साथ साहित्य-कला-संस्कृति भाषा की बुनियादी समस्याओं, चिन्तनों, प्रश्नाकुलताओं से प्रबद्ध पाठकों साक्षात्कार कराया है। व्यक्तित्व की खोज, अस्मिता की तलाश, प्रयोग-प्रगति, परम्परा-आधुनिकता, बौद्धिकता, आत्म-सजगता, कवि-कर्म में जटिल संवेदना की चुनौती, रागात्मक संबंधों में

बदलाव को चेतना, रुढ़ीवाद और मौलिकता, आधुनिक संवेदना और सम्प्रेषणकी समस्या, रचानाकार का दायित्व, नयी राहों की खोज, पश्चिम से खुला संवाद, औपनिवेशक आधुनिकता के स्थान पर देसी आधुनिकता का आग्रह, नवीन कथ्य और भाषा शिल्प की गहन चेतना, संस्कृति और सर्जनात्मकता आदि तमाम सरोकारों को 'अज्ञेय' किसी न किसी स्तर पर रचना-केंद्र में लाते रहे हैं।''

9. कला का उद्देश्य

कला के लिए उद्देश्य अति आवश्यक है।

अज्ञेय मानते हैं कि कला कभी भी उद्देश्यहीन नहीं हो सकती। वे मानते हैं कि कोई भी कवि स्वांत: सुखाए नहीं लिखता। वे अपने भीतर अहं की मुखरता और आत्मभिव्यक्ति के महत्व को स्वीकारते हैं, परन्तु अभिव्यक्ति में श्रोता या पाठक का महत्व उनके लिए सर्वोपरि है। अज्ञेय पाठकों की स्थिति को नकारते नहीं हैं अपितु 'आत्मनेपद' उन्होंने रचनाकार और पाठक की भाव निकटता पर जोर दिया है।

10. परम्परा और आधुनिकता

अज्ञेय की विचार-दृष्टि ने केवल भारतीय परंपरा वरन पाश्चात्य विचारों पर भी आधारित है। अज्ञेय ने पाश्चात्य विचारों से बहुत कुछ लिया परंतु उसे अपनी मौलिकता भी दी। वे काव्य में आधुनिकता के साथ परंपरा के महत्व को स्वीकारते हैं। और मानते हैं कि परंपरा को भुला कर हम आगे नहीं बढ़ सकते। स्वयं 'अज्ञेय' ने कहा है-

''मैं तो नहीं समझता कि मेरी कविता में कुछ ऐसा है जोकि भारत की ही काव्य परम्परा द्वारा अनुमोदित नहीं हो सकता।''

अज्ञेय कविता के लिए परम्परा की आवश्यकता को महसूस करते हैं। उनकी कविता 'नदी के द्वीप' में इसी प्रकार की संवेदना मिलती है। वे परम्परा को शाप न मान कर नियति मानते हैं। वे स्वीकारते हैं कि परम्परा हमें आकार देती है, हमें संस्कारित करती है उनके विचार में परम्परा-गृहीत आधुनिकता ही कलाकार के लिए वरेण्य है।

11. शब्द संस्कार

अज्ञेय ने काव्य के अन्तर्गत् शब्द-संस्कार पर जोर दिया है। अज्ञेय ने इलियट की भाँति भाषा और संवेदन के बदलाव को ही मुख्य कवि कर्म माना है। उन्होंने अपने काव्य में नवीन उपमानों, बिम्बों, प्रतीकों और भाषा का प्रयोग अभिव्यक्ति के माध्यमों के रूप में किया है। उनका मत है—

'ये उपमान मैले हो गए हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गए है कूच
कमी बासन अधिक घिसने से
मुलम्मा छूट जाता है'

वे अपनी प्रियसी को कभी बिछली घास कहते हैं, कमी नई कलगी छरहरे बाजरे की कह कर सम्बोधित करते हैं। अज्ञेय कवि को 'चिरयात्री' कह कर सम्बोधित करते हैं और कवि की यात्रा को 'सही शब्दों की खोज' का नाम देते हैं। अज्ञेय शब्द में नया अर्थ भरने, उसे संस्कार देने और नई अभिव्यक्ति के लिए नए शब्द खोजने की तीनों स्थितियों को स्वीकार करते हैं।

1.7. सारांश

छायावादोत्तर कविता में 'अज्ञेय' निर्विवाद रूप से प्रयोगवाद और नई कविता के अग्रज कवि रहे हैं। उनका आधुनिक भाव बोध एवं उनकी संवेदना उनका कवि के रूप में एक अलग स्तर पर उनका परिचय देती

हैं। व्यक्तित्व की खोज एवं अभिव्यक्ति की खोज उनके आधुनिक बोध का मृत्यु है। 'अज्ञेय' के लिए काव्य-प्रक्रिया महत्वपूर्ण है, निर्वेयत्मिक संवेदना महत्वपूण है।

अज्ञेय की कविता में प्रकृति केवल अलंकरण की वस्तु नहीं है अपितु प्रकृति जीवन दर्शन के उपदेश देती प्रतीत होती है, रहस्मयता को सुलझाती प्रतीत होती है प्रेम से परिचय कराती है। अज्ञेय को मृत्यु भयभीत नहीं करती वरन उनके लिए मृत्यु शाश्वत सत्य है। प्रकृति के उपमान उनकी रचनाओं में नवीनता का संचार करते हैं।

अज्ञेय संघर्ष को सार्थकता का पर्याय मानते हैं। उनकी अधिकतर कविताओं में व्यक्ति और समाज का द्वंद प्रतिबिम्बित होता, आधुनिकता से जुझती चेतना का संघर्ष प्रतिलक्षित होता और रोमांटिक आधुनिक द्वंद प्रत्यक्ष होता है। अज्ञेय के काव्य में शब्द और सत्य में निरंतर द्वंद चलता रहता है। उनके लिए जिजीविषा सघंर्ष की सार्थकता का पर्याय है।

'अज्ञेय' का काव्य विविधताओं का मिश्रण है। उनके काव्य में व्यक्ति और समाज, प्रेम एवं दर्शन, विज्ञान एवं संवेदना, यातना बोध एवं विद्रोह, प्रकृति एवं मानव, तथा बुद्धि हृदय का साहचर्य दिखाई देता है। उनकी कविताएँ आधुनिक युग का दर्पण मानी जाती है।

1.8. प्रश्नावली

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. नई कविता के सदंर्भ में अज्ञेय के काव्य की विवेचना कीजिए
2. अज्ञेय के काव्य में प्रकृति केवल अलंकरण की वस्तु नहीं अपितु प्रकृति जीवन-दर्शन का उपदेश देती है। उक्त संदर्भ में अज्ञेय के प्रकृति चित्रण का सविस्तार वर्णन कीजिए।
3. अज्ञेय की काव्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अज्ञेय को प्रयोगवाद का प्रवर्तक एवं नई कविता का शलाका पुरुष होने का गौरव प्राप्त है। स्पष्ट कीजिए
2. अज्ञेय का जीवन परिचय दीजिए
3. अज्ञेय की कविता में प्रकृति की मानवीय आत्मा को स्पष्ट कीजिए।
4. अज्ञेय के काव्य में यथार्थ के चित्रण को समझाइए।
5. अज्ञेय एक आशावादी कवि हैं परन्तु उनके काव्य में निराशा भी अभिव्यक्त होती है। स्पष्ट कीजिए।
6. अज्ञेय के काव्य में क्षणवाद और रहस्यवाद को समझाइए।

अति लघु प्रश्न

1. अज्ञेय द्वारा सम्पादित तीन ग्रंथो के नाम बताईए।
2. अज्ञेय के एंद्रिय बोध को समझाइए।
3. अज्ञेय के काव्य शब्द संस्कार की विवेचना कीजिए
4. परिवेश चित्रण से कवि का क्या तात्पर्य है।
5. अज्ञेय के क्रांतिकारी जीवन पर प्रकाश डालिए।
6. अज्ञेय की एकांतोन्मुख प्रवृति पर प्रकाश डालिए।

इकाई (Unit)

2

अज्ञेय काव्य में प्रेमभाव एवं काव्य अभिव्यक्ति

संरचना

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 अज्ञेय के काव्य में प्रेमभाव
प्रणय-प्रेम भाव
प्रकृति-प्रेम भाव
मानवीय-प्रेम भाव
2.4 अज्ञेय का अभिव्यक्ति पक्ष
भाषा एवं शब्द योजन
लाक्षणिकता
प्रतीकात्मकता
बिम्ब विधान
अलंकार
द्वंद विधान
2.5 सारांश
2.6 प्रश्नावली

2.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का उद्देश्य है—

- इस इकाई का उद्देश्य है अज्ञेय के काव्य में अभिव्यक्त प्रेम भाव।
- अज्ञेय प्रयोगवादी कविता के कवि हैं। उन्होंने अपनी कविताओं, अपनी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति में विशिष्ट प्रयोग किए हैं। इस संदर्भ मे उनकी काव्य अभिव्यक्ति का विश्लेषण आवश्यक है। इस इकाई में कवि की काव्य अभिव्यक्ति की सविस्तार विवेचना से छात्रों को उनके काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष से परिचित कराया गया है।

2.2. प्रस्तावना (Introduction)

एकांतिकता और अकेलेपन के बीच रमने की प्रवृति और यायावरी ने ही अज्ञेय को भौगोलिक प्रकृति और मानवीय प्रवृति समझने की ताकत दी है। कवि की कविताओं में प्रेम भाव भी नदियों, पहाड़ों, समुद्रों और शब्दों के बीच आवाजाही करते इसी एकांतकता की उपज हैं। उनके प्रेम में आत्म का वैभव है, देने का दर्द,

रुक रुक करता गुहार

कल उसे काट ले जाएंगे

लकड़हारों के

कुल्हाडे, वसूले और आरे।''

अज्ञेय के प्रकृति प्रेमभाव के प्रति यतीन्द्र मिश्र का मंतव्य है ''प्रकृति के प्रति अज्ञेय का यह प्रेमभाव इतना मर्मस्पर्शी और सहज रहा है कि बहुत सारी कविताओं से कुछ आंतरिक पंक्तियों को अलग हटाकर पढ़ने से एक नए ढंग का अर्थ वैशिष्टय देखने को मिलता है। प्रकृति की संवेदना को जितना विलक्षण औरचाक्षुष रंग-रोगन अज्ञेय दे पाए हैं वह, उनके समकालीनों में मुश्किल से मिलता है।

2.3.2. प्रणय प्रेम भाव

अज्ञेय काव्य में प्रणयानुभूति एक सहजात गुण के रूप में परिलक्षित होती है। अज्ञेय की प्रारम्भिक कविताएँ छायावाद से प्रभावित रही हैं। उनकी प्रारम्भिक कविताओं में नारी सौंदर्य से उत्पन्न प्रेम दिखाई देता है। अज्ञेय की कविताओं में पुरुष, स्त्री के केवल रूप को देखता है।

''तुम्हारी देह मुझे कनक-चंपे की कली है

दूर से ही स्मरण में गंध देती है।''

प्रेमानुभूति के विशय में अज्ञेय का दृष्टिकोण आधुनिक है। वे नर-नारी के सम्बन्ध को छायावादियों की तरह कल्पना लोक पर स्थापित नहीं करते। वे नारी-पुरुष के जीवन में प्रेम को बुनियादी आवश्यकता मानते हैं। उनकी कविता का प्रेमी अपनी प्रेमिका की हृदय की गूँज नहीं सुनता। वह उसके दैहिक आकर्षण में ही बंधा रहता है। यह आकर्षण इतना उन्मादित है कि प्रेमी को अपने और अपने प्रियसी मध्य शिष्ट जीवन का कोई भी व्यवधान स्वीकार नहीं है। ''हरी घास पर क्षण भर'' की यह पंक्तियाँ अज्ञेय के इसी प्रेम भाव को प्रदर्शित करती हैं—

''आओ बैठो।

तनिक और सटकर कि हमारे बीच स्नेह भर का

व्यवधान रहे, बस,

नहीं दरारें सभ्य शिष्ट जीवन की।''

उक्त पंक्तियाँ कवि की आधुनिक दृष्टि को भी दर्शाती हैं। वे मानते हैं कि प्रेम ही नर ओर नारी के सम्बन्ध का आधार है। वे एक दूसरे के आकर्षण में बंधे रहते हैं और मुक्त प्रेम की कामना करते हैं। अज्ञेय प्रेम को जैविक क्रिया मानते हैं इसलिए वे मुक्त प्रेम के समर्थक हैं। उनकी यह दृष्टि उनको पाश्चात्यकरण की ओर ले जाती है। कवि सामाजिक बंधनों में बंधकर प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं करना चाहता है।

अज्ञेय का प्रेम में उनका ''मैं'' कहीं ओझल नहीं होता है। वह समपर्ण और आमंत्रण की भाषा भंगिमा में भी कौंध उठता है।

''प्यार लो मेरा

उसी में चांदनी है

उस में तुम

उसी में बीचे हुए सब प्यार भी हैं

(सदानीरा भाग 1)

अज्ञेय के लिए प्रेम लेने का नहीं देने का नाम है। ऐसा प्रतीत होता है मानों देकर ही प्रेम का अहसास और गहरा होता है। इसे दाता का दर्प कहें या अपने अहम् को ऊपर रखने की जिद, पर अज्ञेय के प्रेम में देने का भाव अहम् है।

"जियो उस प्यार में जो मैंने तुम्हें दिया है
उस दु:ख में नहीं जिसे बेझिझक मैंने पिया है।
उस गान में जियो जो मैंने तुम्हें सुनाया है
उस आह में नहीं जिसे मैंने तुमसे छिपाया है।"

(अरी ओ करुणामयी प्रभा)

अज्ञेय के प्रेम में क्षणिक अनुभूति महत्वपूर्ण है। कवि युगों-युगों की संचित प्रेम-कामना एक क्षण में धनीभूत कर देना चाहता है।

"आओ बैठो : क्षण भर तुम्हें निहारूँ।
अपनी जानी एक-एक रेखा पहचानूँ
चेहरे की, आँखों की - अन्तर्मन की
और-हमारे साझे की अनगिनत स्मृतियों की।"

अज्ञेय के प्रेम भाव में वासना ही अभिव्यक्त नहीं होती है। उनकी प्रेम भावानुभूति में प्रेम के प्रति दृढ़ विश्वास ही झलकता है।

"क्या कहीं प्यार से इतर
गैर है कोई
जो इतना दर्द सँभालेगा?
पर मैं कहता हूँ
अरे आज पा गया प्यार मैं वैसा
दर्द नहीं अब मुझको सालेगा।"

(अरी ओ करुणामयी प्रभा)

अज्ञेय के प्रेम में मिलन का आनन्द ही नहीं है विरह की वेदना भी है। इस विरह वेदना से कवि का प्रेम अधिक निखर कर आता है—

"पा न सकने पर तुझे संसार सूना हो गया है-
विरह के आघात से प्रिय! प्यार दूना हो गया है।

अज्ञेय के प्रणय प्रेम भाव में लौकिक प्रेम का युक्त आमंत्रण है। यद्यपि उनका प्रेम दैहिक आकर्षण जनित है तथापि उनका प्रेम में पूर्ण विश्वास भी है। उनके प्रेम में प्रणय की टीस, वेदना और झटपटाहट भी है जिससे उनके प्रेम का रूप और अधिक निखर कर आता है।

2.3.3. मानवीय प्रेम

अज्ञेय के काव्य में प्रेम का एक और भाव देखने को मिलता है "मानवीय प्रेम"। उनका मानवीय प्रेम भारतीय चेतना पर आधारित है। अपने उस प्रेम भाव से वे अपनी व्यक्तिक पीड़ा को भुलाकर दूसरों के मंगल की कामना करते हैं। उनमें व्यक्ति के प्रति समर्पण की ऐसी भावना है जिसमें उन्हें दु:ख रूपी विष को भी पचाने

में संकोच नहीं होता उनके मानवीय प्रेम भाव में लोक कल्याण की भावना निहित हैं। उनके इस प्रेम भाव सर्वे भवन्तु सुखिनः का भाव निहित जहाँ वे सभी के सुखी होने की कामना करते हैं। उनके काव्य में व्यक्ति के प्रति दया, प्रेम, करूणा और सेवा की भावना विद्यमान है। वे नहीं चाहते जो दु:ख उन्होंने अपने जीवन में भोगे हैं वे कष्ट अन्य किसी व्यक्ति को भोगना पड़े। तभी तो वे कहते हैं—

"जियो उस प्यार में
जो मैंने तुम्हें दिया है,
इस दु:ख में नहीं जिसे
बेझिझक मैंने पिया है।
उस गान में जियो
जो मैंने तुम्हें सुनाया है।
उस आह में नहीं जिसे
मैंने तुमसे छिपाया है।"

अज्ञेय की व्यक्ति के प्रति ऐसी प्रेम की दृष्टि उनकी श्रेष्ठ भारतीय वैचारिकता को दर्शाती है। मानव प्रेम ही सबसे बड़ा प्रेम है। सही मायनों में मानव प्रेम ही सबसे बड़ा धर्म है। महात्मा बुद्ध, स्वामी विवेकानन्द, गाँधी आदि विचारक हमारे लिए पथ प्रदर्शक इसलिए हैं क्योंकि उन्होंने पूरे विश्व को मानव प्रेम का पाठ पढ़ाया है। अज्ञेय भी इनके विचारों से प्रभावित रहे हैं। उनकी दृष्टि सदा ही व्यक्ति के लिए कल्याणमयी रही है, तभी तो वे कहते हैं—

"ऋषियों की अस्थियों से भी
सुर गण केवल अस्त्र बना पाए
क्यों नहीं उनसे खाद बनी
जो अकाल अनावृष्टि में
रसा वसुंधरा को फलवती बनाए
लोक जन के काम आए।"

अज्ञेय का माननीय प्रेम मार्क्सवादी विचारधारा से भी प्रभावित है। उनकी कविताएँ शोषित वर्ग की दशा का, उनकी पीड़ा का वर्णन करती हैं। वे शोषित वर्ग की दशा का, उनकी पीड़ा का अनुभव करते हैं क्योंकि वे उसे अपनी पीड़ा मानते हैं।

"क्योंकि जिसने कोड़ा खाया है
वह मेरा भाई है
क्योंकि यो उसकी मार से मैं भी तिलमिला उठा हूँ"

उनका मानवीय प्रेम सर्वधरा वर्ग (शोषित वर्ग) से जुड़ा है। वे सदा उसके साथ हैं जो कष्ट में हैं, दु:खी है। यही है उनके मानवीय प्रेम भाव की अभिव्यक्ति।

इस तरह हम देखते हैं कि अज्ञेय के काव्य में प्रकृति प्रेम है, प्रणय प्रेम है और उनकी कविताओं में मानवीय प्रेम भाव भी प्रखर है। यह उनकी संवेदना का हिस्सा है और उनकी कविताओं का आधुनिक बोध है।

2.4. अज्ञेय का अभिव्यक्ति पक्ष

अभिव्यक्ति कवि के भावों की, उसकी संवेदनाओं की प्रस्तुतिकरण का माध्यम है। अभिव्यक्ति साहित्य की सामान्य संहिता है जो विभिन्न भाषाई नियमों उपनियमों की अवधारिणी है। इसमें कविता की कलात्मकता प्रदर्शित होती है जिसमें भाषा, शैली, बिम्ब, अलंकार, प्रतीक आदि का निरुपण होता है।

अज्ञेय को आधुनिक काव्य का सर्जक कहा जाता है। वे प्रयोगवादी कविता के प्रर्वतक कवि हैं। उनकी विचारधारा उनकी अनुभूति ही आधुनिक नहीं है अपितु उनकी रचना की अभिव्यक्ति भी आधुनिक है। वे रचना की अभिव्यक्ति को संप्रेषण का माध्यम मानते हैं। अज्ञेय शब्दों में नए अर्थ का अनुसंधान, अर्थों में नई चेतना की जीवंत झंकृति भरने वाले स्वर साधक रचनाकार हैं। उन्होंने कथ्य एवं शिल्प के धरातल पर हिन्दी साहित्य को नवीन दृष्टि दी है। वे पुराने और मैले पड़ चुके उपमानों के स्थान पर कविता में नए उपमानों के प्रयोग पर बल देते हैं।

"ये उपमान मैले हो गए हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच"

अज्ञेय ने शिल्प के स्तर पर शब्द, बिम्ब, प्रतीक, लेथक आदि के नए रूपों पर नए ढंग से विचार किया है। उनके काव्य में संवेदना के निए आयामों की अभिव्यक्ति मिलती है। अत्यंत अल्प शब्दों के प्रयोग से विशाल कथ्य की अभिव्यक्त करने या समाविष्ट करने की अज्ञेय में शिल्पगत कुशलता है। उनका कथन है—

"व्यंजना के पुराने साधन पर्याप्त नहीं है। कवि नई सूझ, नयी उपमाएँ, नया चमत्कार कविता में लाता है। ये धीरे-धीरे परिचित होकर हमारी भाषा को संपन्नतर बनाते हैं।"

2.4.1. भाषा एवं शब्द योजन

अज्ञेय भाषा के नए रूप की आवश्यकता पर बल देते हैं। उनकी भाषा की मौलिकता ने उनके काव्य को प्रौढ़ और सौष्ठव रूप दिया है। अज्ञेय के काव्य में प्राय: शुद्ध, साहित्यिक एवं परिनिष्ठित खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है, किन्तु उनकी भाषा में विविधता के भी दर्शन होते हैं। कवि ने कभी-कभी अपनी कविता की पूरी पंक्ति तत्सम शब्द प्रधान में अभिव्यक्त की है। उदाहरण के लिए"उषा काल की भव्य शान्ति" की इन पंक्तियों का अवलोकन कीजिए—

"निविप्रऽन्धकार को निवेदन मूर्त रूप दे देने वाली
एक अंकिचन, निष्प्रेम, अनाहूत, अज्ञान इद्युति-किरण"

उक्त पंक्ति में 'अकिंचन', 'निष्प्रेम', 'अनाहूत' 'अज्ञात' आदि तत्सम शब्दों का एक साथ प्रयोग हुआ है।

इसी प्रकार कवि ने अपने काव्य में संस्कृत की पूरी पंक्तियों का भी प्रयोग किया है, जिससे उनके भाषा ज्ञान, भाषा पर अधिकार, शब्द रचना कौशलता की विशिष्टता खुलकर सामने आती है। 'आषाढ़स्य प्रथम दिवस', 'अहं राष्ट्री संगमती लनानाम', 'कलोडय समागत', 'तं तुम देश न पश्यामि' आदि। उनकी ऐसी सुसंस्कृत भाषा से ही अज्ञेय काव्य की महत्ता जानी जाती है।

अज्ञेय ने अपने काव्य में बहुत ही सरल, सुबोध एवं तद्भव प्रधान सीधी-सरल भाषा का भी प्रयोग किया है। 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'इन्द्रधनुष गैंदे हुए', 'अरी ओ करुणामयी प्रभा' आदि काव्य संग्रह में उन्होंने अनेक तद्भव शब्दों का बहुत ही सहजता से प्रयोग किया है—

"नहीं कारण कि मेरा हृदय उचला या कि सूना है,
या कि मेरा प्यार मैला है"
"कलगी बाजरे की"

"तुम्हारे नैन भोर की ओस की दो बूँदे हैं"

"धमनियों में उमड़ आई है लहु की धार"

अज्ञेय ने अपनी कविताओं को ग्राम्य एवं देशज शब्दावली युक्त नूतन एवं नवीन पदावली से भी सजाय है। जैसे—

"भोर की नीहार ... हरई कुई"

"अँजुरी भर पी लो"

"बोध को ही आँज जाती है"

"हरी बिछली घास"

अज्ञेय के काव्य में भाषा के शब्दों की विविधता भी दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने अपने काव्य तत्सम-तद्भव शब्दों के साथ कुछ ऐसी शब्दावली का प्रयोग किया है जो उनके द्वारा ही गठित हैं——

"यह बसंत की बदली

पर क्या जाने कहीं बारस ही जाए

विरस ठूँठ में कहीं

प्यार की कोपल कहीं सरस हो जाए

दूर-दूर भूली उषा की

खोई किरण एक अलसानी

उसकी चितवन हल्की सी

सिरहन मुझमें परस हो जाए।"

बसंत की बदली (बावरा अहेरी)

उक्त पंक्तियों में जहाँ बरस, विरस, सरस, परस जैसी तुकबंदी कविता निखर उठी है वही ठूंठ, प्य अलसानी, सिरहन जैसे देशज शब्द का प्रयोग अज्ञेय के काव्य का विशिष्ट सौन्दर्य है। देशज, ग्राम्य बोलचाल में प्रयुक्त शब्दों ने जैसे अंजुरी, ठूंठ प्यार, नीहार, कुई, गलियारे, कौंध, लहु, लुनाई, त्याहई, कवि अभिव्यंजना को अधिक सर्वजन सुलभ, सर्वजनग्राह्य एवं सर्वजनप्रिय बनाया है।

कवि ने बोलचाल में प्रयुक्त अन्य भाषा के शब्दों को यथा स्थान अपनाकर अपनी भाषा को और अधि लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया है। कवि ने अंग्रेजी के शब्दों जैसे कलैण्डर, फ्रेम, पार्क आदि उर्दू-फारसी के शब्दों, जैसे, इज़हार, जोखम, हवाला, चाँद, दाग इत्यादि, से अपनी कविता को सजाया है।

देशज और ग्राम्य शब्दों के प्रयोग से अज्ञेय की कविता लोक-जीवन को उभारती है। कवि पद-योजना की यह सबसे बड़ी विशेषता है। गोड़ गए, बेध गई, चेत उठी, लहलहाती, लजाती इत्यादि शब्दों के प्रयोग से अज्ञेय कविता में स्थानीय प्रभाव के साथ-साथ लोक-जीवन की सुगंध भी आ गई

अज्ञेय ने कविता में अपने अन्वेषित शब्दों का भी प्रयोग किया है, जिससे कविता में नवीनता का होता है। उदाहणार्थ—अलसानी, द्रवांचल, टेहुनी, हरी घास छुलसानी, जुगनू का टिमकना, भतियाता स लहरीला, हरियाना इत्यादि।

इस प्रकार कवि ने अपनी भाषा को भावों एवं विचारों के अनुकूल ढ़ालने के लिए विविध प्रकार के श से अलंकृत एवं सुसज्जित किया है। कहीं कवि की संस्कृतमय शब्दावली उनकी कविता को अभिजात्य ब है तो कहीं अप्रचलित एवं दुरुह पदावली उनकी कविता को अस्वाभिक बनाती है। अज्ञेय की विशेष बात

कि वे विराट के दर्शन बहुत ही कुशलता से कराते हैं और यही उनका भाषिक कौशल्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है "उत्तम ग्रंथकार वह नहीं होता जो गद्य या पद्य में सुन्दर भड़कीले शब्दों से गुथा हुआ कोई शब्द बना सके, उत्कृष्ट कवि वही है जिसे कुछ कहना होता है और जो यह जानता है कि उसे किस प्रकार कहना है।

2.4.2. लाक्षणिकता

अज्ञेय के काव्य में मुहावरों और लोकोक्ति के माध्यम से लक्षणिकता का सृजन हुआ है। यह उनकी कला दृष्टि का परिचायक है। मुहावरों और लोकोक्ति का प्रयोग भाषा की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। यह भाषा को समृद्ध करते हैं। इस दृष्टि से अज्ञेय के काव्य और उनकी भाषा संरचना में इसका गहन प्रभाव है। अज्ञेय के सभी काव्य ग्रंथों में मुहावरों और लोकोक्ति का पारंपरिक एवं नवीन रूप दिखाई पड़ता है। अनेक मुहावरों का एक साथ प्रयोग अज्ञेय की भाषा-शिल्प का प्रतीक है। उदाहरणार्थ "इन्द्रधनुष रौंदे हुए" में "इतिहास के न्याय" का अवलोकन कीजिए—

"जो जिये वे ध्वजा फहराते घर लौटे
जो मरे वे खेत रहे
जो झूमते नगर लौटे, डूबे जय रस में।"

कविता में "ध्वजा फहराते, खेत रहे, झूमते नगर लौट, घर लौटना जैसे मुहावरों का पारम्परिक रूप में प्रयोग हुआ है। कुछ और मुहावरों का पारम्परिक रूप में प्रयोग हुआ है। कुछ और मुहावरों लोकोक्तियों का प्रयोग इस प्रकार भी मिलता है—

'आंगन के पार द्वार' संग्रह-घिग्घी बांधना, हड्डी पसली तोड़ना, ठिठक जाना, ढ़लती उम्र के दाग धोता" आदि मुहावरों और लोकोक्तियों का सशक्त प्रयोग हुआ है।

अज्ञेय की उत्तर रचनाओं में अनेक मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने "मैं सन्नाटा बुनता हूँ" संग्रह में 'अंटी में खोसते नाला', लाठी में चुपड़ते तेल, मस्का लगाना, तेरे सिर पर कोल्हू आदि लोकोक्तियों का प्रयोग किया है।

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में उर्दू के मुहावरों का भी प्रयोग किया है—

"उसमें आज बह रही खूं की नदियां हैं।
कल ही जिसमें खाक मिट्टी कहके हमने थूका था
घृणा की आज उसमें पक गई खेती"

शरणार्थी-2

कविता की इन पंक्तियों में खूं की नदियाँ, खाक मिट्टी, हमने थूका, पक गई खेती आदि उर्दू मुहावरों के प्रयोग से घृणा का दृश्य उभरकर सामने आया है।

अज्ञेय की उत्तर रचना जैसे 'कितनी नावों में कितनी बार', 'क्योंकि तुम हो', 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ', 'महा वृक्ष के नीचे', 'बाँक की छाया' आदि कविताएँ मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से रोचक, सारगर्भित औरअर्थपूर्ण बन पड़ी है। कवि ने 'कीचड़ में भैंस खड़ी पंगुराय', 'धरती को सींचा लहु से', पैरों में बिवाईयाँ, खून चूसना आदि के प्रयोग से कविता को विविध अर्थ-संदर्भ से मंडित किया गया है। अनेक मुहावरों-लोकोक्तियों के प्रयोग से अज्ञेय की भावाभिव्यक्ति को नया संदर्भ मिला है। जैसे-'चटक कर टूट जाना', 'मेरे नयन क्यों तरसे', 'छाती का घाव', 'खून के दाग', 'सन्नाटे का छंद' में कुछ नए शब्दों के संश्लेषण से अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है।

जैसे 'देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच', 'शरद चाँदनी बरसी, अँजुरी भरकर पी लो', 'ऊंघ रहे हैं तारे', 'अनगिनत पैरों तले रौंदी हुई अविराम' इत्यादि पंक्तियों में मुहावरों के माध्यम से लाक्षणिकता का सृजन हुआ है। इनमें ऐसी पदावली का प्रयोग हुआ है जो अभिधेचार्य से भिन्न लक्ष्यार्थ एवं सांकेतिक अर्थ की द्योतक है।

अज्ञेय ने अपने काव्य में ऐसे भी लाक्षणिक प्रयोग किए हैं जिनमें अभिधेयार्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ ने नूतन भाव-गाम्भीर्य एवं अर्थ-सौष्ठव की सृष्टि की है। जैसे—'मूल्य का झोंका बुला गया', 'सिरिस ने रेशम से वेणी बाँध ली', 'हंस उठी कचनार की कली', 'ऊषा जाग उठी छायी में', 'स्नेह-भरे बादलों से व्योम छा गया', 'प्यार ही में यौव है, यौवन ही में प्यार', 'यह दीप स्नेह भरा है गर्व भरा मदमाता', 'सूने गलियारों की उदासी', 'पवन के थपेड़ों से आहत सागर', इत्यादि। इन पंक्तियों में लाक्षणिक सौंदर्य विद्यमान है।

उपरोक्त विवेचना से हम कह सकते हैं कि मुहावरों, लोकोक्तियों और काव्य में लाक्षणिक प्रयोग से अज्ञेय के काव्य अर्थ की गंभीरता लक्षित होती है, उक्ति वैचित्र्य का चमत्कार उत्पन्न होता है और भाषा में कलात्मकता की सृष्टि होती है।

2.4.3. प्रतीकात्मकता

कवि अपनी अनुभूतियों को अभिव्यंजनित करने के लिए प्रतीक का प्रयोग करता है। कविता के भावों को कलात्मक रूप देने के लिए कवि प्रतीकों का प्रयोग करते आए हैं। प्रतीक के सम्बंध में डॉ० भागीरथ मिश्र का मत है—"अपने रूप, गुण, कार्य विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार, क्रियाकलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है।"

अज्ञेय ने अपनी कविता में ऐसे कितने ही प्रतीकों का प्रयोग किया है जो अपने सहज एवं वास्तविक अर्थ को खोकर केवल एक निर्दिष्ट अर्थ की प्रतिति कराने में सर्वथा समर्थ जान पड़ते हैं। इन प्रतीकों में नवीनता के साथ-साथ विविधता है, मार्मिकता के साथ-साथ स्वभाविकता है और भौतिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता है।

अज्ञेय ने अपने काव्य में प्राकृतिक उपमानों का प्रतीकों के रूप में विपुलता से प्रयोग किया है। चिड़िया, हरिल, नदी, आंगन, आकाश, इंद्रधनुष, मछली, सागर, घास, तिनका, कली, किरणें आदि अनेक प्रतीक योजना से अज्ञेय ने अपने मनोभावों और संवेदनाओं को व्यक्त करते हैं। इन प्रतीकों का तीन वर्गों में विभाजन किया ज सकता है—

(क) आत्म प्रतीक—इस वर्ग में वे प्रतीक आते हैं जिनका सम्बन्ध कवि के निजी जीवन से है। मछली सागर, हरिल, बूंद आदि अनेक प्रतीकों का अज्ञेय ने अपने काव्य में बहुलता से प्रयोग किया है।

"तिनका पथ की धूल, स्वयं तू है अनंत की धूल
किंतु आज तूने नभ-पथ में क्षण ये बद्ध अमरता छू ली
उषा जाग उठी प्राची में - आवाहन यह नूतन दिन का
उड़ चल हरिल, लिए हाथ में एक अकेला तिनका।"

कवि के हरिल पक्षी उनकी आस्था और कर्मठता का प्रतीक है। हरिल के पंजे में दबा तिनका उनके सृजन के यतिकिंचित साधन का प्रतीक है। इसी प्रकार सागर कवि के लिए सागर अंतर्मन का प्रतीक है औ सागर का विराटता को कवि जीवन से जोड़कर देखते हैं। सागर में उठती लहरें कवि के मन में उठते विचार है 'उछली मछली' प्रतीक है अपनी अस्मिता के संघर्ष का, जिजीविषा का। ऊपर का आकाश और 'बुलबुल उदात्त जीवन-मूल्यों का प्रतीक है। "हरी घास" कवि के मन की कोमलता और जीवन की व्यापकता का प्रतीक

है। कवि के लिए फूल के कोमलता के साथ जीवन की नश्वरता का भी प्रतीक है। अज्ञेय इन प्रतीकों से जीवन-सत्य, आत्मान्वेषण और रहस्यों की ओर बढ़ते हैं और अपने मन की गहराईयों में झाँकते हैं। सागर मछली, बूँद प्रतीकों से कवि को दार्शनिकता भी उजागर होती है।

(ख) प्रेम सम्बन्ध प्रतीक—इस वर्ग में वे प्रतीक आते हैं जिनका सम्बन्ध कवि की प्रेम भावना से है। 'कुमुद' प्रेमी का प्रतीक है, 'झील का निर्जन किनारा' वियोग का प्रतीक है, 'उदास-साँझ' असफल प्रेम का प्रतीक है, 'सूनी सी साँझ' प्रेमिका के अकेलेपन का प्रतीक है। 'उस सूनी साँझ के पीछे-पीछे घुस आयी बिजली की बत्तियाँ या मनुष्यों की खड़ी-खड़ी बोलियाँ' दो प्रेमियों के मिलन में बाधा उत्पन्न करने वाली ईर्ष्यालू नारियों का प्रतीक है। ऐसे ही 'अंतरंग चेहरे', 'हेरते, गोरते हो लोचन' सम्पूर्ण सृष्टि के साथ जगात्मक सम्बंध करने वाले कवि के उस प्रेम के प्रतीक है, जिसमें उस सृष्टि के समस्त चेहरों का निजीपन केन्द्रित जान पड़ता है।

(ग) सांस्कृतिक प्रतीक या मिथक—इस वर्ग में वे प्रतीक आते हैं जिनका सम्बन्ध कवि की ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा से है। उदाहरणार्थ 'इतिहास की हवा' में 'अभिनव द्रोण' वर्तमान गुरु की बदली हुई प्रवृति का प्रतीक है जो छल और कपट से परिपूर्ण है और 'एकलव्य' वर्तमान के निर्दय और स्वार्थी मनुष्य का प्रतीक है। मिथक प्रयोग में अज्ञेय की "असाध्य वीणा एक महत्वपूर्ण कविता है। इस कविता में कवि ने मिथक से जड़ को चेतन द्वारा साधा है। इसका आधार रहस्यात्मक और आलोकिक मिथक है। 'असाहय वीणा' में वीणा आत्मा का प्रतीक है और 'वीणा की ध्वनि' उस अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय एवं शब्दहीन महाशून्य के संगीत की प्रतीक है जो सर्वव्याप्त है। इसी प्रकार 'बावरा अहेरी' सूर्य का प्रतीक है, 'चक्रान्ताशीला' कविता खण्ड में 'क्वारी कन्या' आत्मा का प्रतीक है। अज्ञेय मन के अंतर्द्वंद को सागर के मिथक से दर्शाते हैं। 'वासुदेव प्याला' में अज्ञेय ने कृष्ण के दोहरे चरित्र से वर्तमान के दोगले व्यक्तित्व के लोगों पर व्यंग किया है।

अज्ञेय ने अपने काव्य में वैज्ञानिक प्रतीकों का भी गठन किया है। 'हिरोशिमा' कविता में कवि परमाणु बम की मानव का रचा हुआ सूरज कहते हैं 'छायाएँ' प्रतीक है अणुक्रम से मृत जनसमूह को।

अत: अज्ञेय के काव्य में प्रतीकों और मिथकों का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। इनके प्रयोग से कवि की भाषा के गुणात्मक सौंदर्य में ही वृद्धि नहीं होती है, अपितु कवि अपनी अनुभूति को यथावत अभिव्यक्त करने में भी समर्थ होता है।

2.4.4. बिम्ब विधान

अज्ञेय की कविताओं में बिम्ब विधान से उनकी भाषा का सशक्त रूप दिखाई देता है। अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए कवि अपनी रचना में बिम्ब का प्रयोग करता है। बिम्ब अंग्रेजी के इमेज शब्द का अनुवाद है। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा बिम्ब की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं—

सी०डे० लीविस

"काव्य-बिम्ब एक प्रकार का भाव-गर्भित शब्दचित्र है।"

हैब्ले

"बिम्ब किसी अमूर्त विचार अथवा भावना की पुरर्निमिती है।"

इस सन्दर्भ में भारतीय विद्वान कहते हैं—

डॉ० कुमार विमल 'बिम्ब विधान कला का वह क्रिया पक्ष है, जो कल्पना से उत्थित है।'

रामधारी सिंह दिनकर "बिम्ब कविता का अत्यन्त आवश्यक गुण है, प्रत्युत कहना चाहिए कि यह कविता का एक मात्र शाश्वत तत्व हैं, जो उससे कभी नहीं छूटता।"

सुमित्रानंदन पंत "कविता के चित्र भाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिए। जो बोलते हों सेव की तरह, जिसके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनी में आँखों के सामने चित्रित कर सके। जो झंकार में चित्र और चित्र में झंकार हो।"

अज्ञेय की अंतदृष्टि अनेक सूक्ष्म अनुभूतियों से विचार को ग्रहण करती है। उनकी ये अनुभूतियाँ अनेक बिंबों का निर्माण करती हुई उनके विचारों को अभिव्यक्त करती है। अज्ञेय के विचारों की नवीनता से नए बिंबों की भी रचना की जाती है। कवि ने चारों प्रकार के बिम्बों का प्रयोग किया है, जो केन्द्रिय बिम्ब, वस्तुपरक बिम्ब, भाव बिम्ब और आध्यात्मिक बिम्ब कहलाते हैं।

केन्द्रिय बिम्ब : केन्द्रिय बिम्ब की योजना करते हुए कवि ने दृश्य-बिम्ब, श्रव्य बिम्ब, स्पृश्य बिम्ब, घ्रात्वय बिम्ब और आस्वाध बिम्बों को संश्लिष्ट रूप से अंकित किया है।

दृश्य बिम्ब : पीपल की सूखी डाल स्निग्ध हो चली,
सिरिस ने रेशम की वेणी बाँध ली,
नीम के भी बौर में मिठास देख,
हंस उठी है कचनार की कली

श्रव्य बिम्ब रेतीले कगार का गिरना छप-छडाप।
झंझा की फुफकार, तप्त,
पेड़ों का अररा कर टूट-टूटकर गिरना
ओले की करीं चपत

स्पृश्य बिम्ब मलय का झोंका बुला गया
खेलने से स्पर्ष से
वो रोम-रोम को कँपा गया

घ्रातव्य बिम्ब तुम्हारी देह
मुझको कनक चम्पे की कली है
दूर से ही
स्मरण में भी गन्ध देती है।

आस्वाद बिम्ब जिन आँखों को तुमने गहरा
बतलाया था
उनसे भर-भर मैंने
रूप तुम्हारा पिया।

(ख) वस्तुपरक बिम्ब : इन बिम्बों के अंतर्गत कवि ने मानव और प्रकृति सम्बंधी विविध प्रकार के बिम्बों का विधान है।

(i) तुम्हारे नैन
पहले भोर की दो ओस-बूँदे हैं

अछूती, ज्योतिमय,
भीतर द्रवित!

(ii) पहले सागर आँक
विस्तीर्ण प्रमाण नीला,
ऊपर हलचल से भरा,
पवन के थपेड़ों से आहत,
शत-शत तरंगों से उद्वेलित।

(iii) वज्रकीर्ति ने मंत्रपूत जिस
अति प्राचीन किरीट-तरु से इसे गढ़ा था
उसके कानों में हिम शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,
कन्धों पर बादल सोते थे,
उस की करि-शुण्डों-सी डालें
हिम-वर्षा से पूरे वन-यूथों का कर लेती थी परित्राण,

(ग) भाव बिम्ब : कवि ने रति, आक्रोश, उल्लास, ममता, करुणा, श्रद्धा, अभिलाषा, तृष्णा, आशा, निराशा, कामना, सुख-दु:ख आदि भावों से सम्बन्धित बिम्बों की रचना की है।

(i) रति बिम्ब घिर गया नभ, उमड़ आए काले मेघ
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका सा
विशद, श्वासाहत चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष
वज्र सा, यदि तड़ित से झुलसा हुआ सा।

(ii) आक्रोश हमने न्याय नहीं पाया है
हम ज्वाला से न्याय करेंगे
धर्म हमारा नष्ट हो गया,
अभिधर्म हम हृदय में धरेंगे।

(iii) उल्लास मन में दुबकी ज्यों परछाई हो चोरी की
तेरी बाट अंगोरती ये आँखें हुई चकोर की

(iv) व्यथा निशा के उर में हैं बसे आलोक-सी है व्यथा व्यापी
प्यार में अभिमान की पर कसक ही
रोने नहीं देती।
पूर्णिमा की चाँदनी सोने नहीं देती।

(v) जिजीविषा हम निहारते रूप,
काँच के पीछे

हाँप रही थी मछली।

रूप तृषा भी

(और काँच के पीछे)

है जिजीविषा।

(vi) विश्वास यह वह विश्वास, वही जो अपनी लघुता में भी काँपा,

वह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयं उसी ने नापा,

(vii) करुणा किन्तु नहीं क्या यही धुन्ध है सदावर्त्त

जिसमें नीरंध्र तुम्हारी करुणा

बाँटती रहती है दिन-याम

(घ) आध्यात्मिक बिम्ब : कवि ने जीवन, जगत, ब्रह्म, मन्या, मोक्ष, आत्मा, परमात्मा आदि से संबन्धित आध्यात्मिक बिम्बों का सृजन भी बहुत ही सुन्दरता से किया है, जिनमें सांस्कृतिक महत्व के साथ-साथ कलात्मक सौंदर्य भी विद्यमान है।

(i) तू मिट्टी का किन्तु आज मिट्टी को तूने बाँध लिया है,

तू था सृष्टि सृष्टा का गुर तूने पहचान लिया है।

(ii) ओ आत्मा री तू गयी बरी,

ओ सम्पृक्ता, ओ परिणीता,

महाशून्य के साथ भाँवरे तेरी रची गयीं।

2.4.5. अलंकार

अज्ञेय ने अपनी कविताओं को युग की भावनाओं में ढालने के लिए अपनी रचनाओं को विविध प्रकार के नवीन एवं सजीव उपमानों से अलंकृत किया है। कवि ने इन अलंकारों द्वारा ने केवल वस्तु-वर्णन को सजीव बनाया है अपितु भाव-चित्रण में भी रमणीयता दी है। कवि के द्वारा प्रयोग किए गए विभिन्न अलंकार निम्न हैं—

(क) उपमा अलंकार अपने काव्य को सजाने के लिए

कवि ने सबसे अधिक 'उपमा' अलंकार का प्रयोग किया है। जैसे—

(i) जम्हाई सी स्फीत रातें

(ii) चिमटी से जकड़ी सी नम की धिगली में

तारों की बिसरी सुरयाँ सी यादें

(iii) अरुणाली पर घुटन की एक स्याही सी छा गयी

(iv) स्फटिक-मुकुर-सा निर्मल वापी का तल इत्यादि

(ख) रूपक अलंकार

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में रूपक अलंकार का भी विशिष्टता से प्रयोग किया है।

(i) तुम्हारी देह मुझको कनक चम्पे की कली है।

(ii) तुम्हारे नैन पहले भोर की दो ओस-बूँदे हैं।

(iii) काल की दुर्बल कदा

(iv) नीचे मौन की सरिता दिग्विहीन बहती है

(v) सांस का पुतला हूँ मैं इत्यादि

(ग) उत्प्रेक्षा अलंकार

कवि ने अपनी कविताओं में उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है।

(i) मोड के भीतर - घिरे हों बांह मे जो गुच्छ लाल बुरुँस के

(ii) ओस - बूँदें की ढरकन - इतनी कोमल, तरल कि झरते-झरते मानो हार सिंगार के फूल बन गए

(घ) अन्योक्ति अलंकार

उड़ चल हरिल फिर-हाय में यही अकेला, ओछा तिनका

(ड) रूपकातिश्योक्ति अलंकार

बिछली घास हो तुम

या शरद की सांझ के सूने गगन की पीठिका पर दोलती कलंगी अकेली

बाजरे की

(च) संदेह अलंकार

1. अगर मैं तुमको ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका

अब नहीं कहता

2. या शरद के भार की नीहार-त्हायी कुई

(छ) दृष्टान्त अलंकार

कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्म छूट जाता है

(ज) उल्लेख अलंकार

यह दीप —

यह मधु है .....

यह गोरस है .....

यह अंकुर .....

यह प्रकृत, स्वयंभू, ब्रह्म, अचुत

(झ) विरोधाभास अलंकार

वैसी शीतल अनल-शिखा न फिर जली

(ज) समासोक्ति अलंकार

(i) अरे अन्त:सलिला है रेत अनगिनत पैरों तले रौंदी हुई अविराम .....

(ii) पड़ी सज्जाहीन, धूसर-गौर, निरीह और उदार

(ट) मानवीकरण अलंकार

(i) टेसुओं की आरती सजा के बन गई वधु वनस्थली

(ii) यह दीप अकेला स्नेह भरा

है गर्व भरा मदमदाता

(iii) पूर्णिमा की चाँदनी सोने नहीं देती

(iv) ऊँघ रहे हैं तारे इत्यादि

(ट) विशेषण-विपर्यय अलंकार

(i) लजणती साँझ

(ii) बाँस अनुकम्पा

(iii) संकल्प मेरा द्रवित, आहुत इत्यादि

(ठ) ध्वन्यर्थ व्यंजना

(i) संध्या गोधूली की लघु टुनटुन

(ii) भेंड़ से बहते पानी की छुल-छुल

(iii) घरघराहट चढ़ती बहिया की इत्यादि

अज्ञेय ने अपने काव्य में पूर्व प्रचलित और नूतन अलंकारों का प्रचुरता में उपयोग किया है। उन्होंने जो प्रयोगवाद की नींव डाली थी उसमें उन्होंने नित नवीन प्रयोग किए हैं। यही कारण है कि अज्ञेय अलंकृत भाषा के साहित्यकार हैं।

(ठ) छन्द विधान

अज्ञेय ने छंद को भावाभिव्यक्ति में बाधक नहीं माना, परन्तु जहाँ पर अभिव्यक्ति में छंद का बंधन बाधा बना वहाँ उन्होंने नवीन प्रयोग किए। उनकी आरंभिक रचनाएँ ज्यादातर यांत्रिक एवं वार्णिक छंदों में लिखी गई थी जहाँ उन्हें आभास हुआ कि शास्त्रियता के बंधन में बांध उनकी रचनाएँ अपनी स्वतंत्रता खो रही है। वे गीतिका, बरवै, हरिमीतिका, आदि छन्द विधानों को छोड़कर मुक्त छन्द की ओर प्रवृत्त हुए। अज्ञेय को काव्यात्मक गद्य लिखने में विशेषआनन्द आता था। उनकी कविताओं में स्वर, लय एवं गति युक्त पथ अधिक दिखाई नहीं देते।

अज्ञेय ने लोक धुन पर गीत भी लिखे हैं, परन्तु उन्हें स्वच्छंद लिखना अधिक प्रिय था। उनके मतानुसार यदि कोई कवि गीत लिखता है तो वह कवि न होकर संगीतकार की श्रेणी में आ जाता है। अत: उन्होंने आगे की रचनाएँ यान्त्रिक एवं वर्णिक छंद छोड़कर केवल मुक्त छन्द में ही लिखी है। अत: उनके छन्द विधान को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(क) गेय प्रगति

(ख) मुक्त छन्द

(क) गेय प्रगति—गेय प्रगीत के अन्तर्गत अज्ञेय के द्वारा रचित गजल, कहर, लोक धुन आदि आती है।

1. वे रोगी होंगे प्रेम जिन्हें अनुभव-रस का कटू व्याप्त है

वे मुर्दे होंगे प्रेम जिन्हें सम्मोहनकारी हाला है,

मैंने विदग्ध को जान लिया, अन्तिम रहस्य पहचान किया

मैंने आहुति बनकर देखा, यह प्रेम यज्ञ की ज्वाला है।

(ख) मुक्त छन्द —"निराला" के बाद अज्ञेय ने मुक्त छंद का सर्वाधिक प्रयोग किया है। कवि ने मुक्त छन्दों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) लय एवं तुक युक्त मुक्त छन्द—मुक्त छन्द के अंतर्गत कवि ने ऐसी बहुत सी रचनाऐं लिखी है जिनकी सभी पंक्तियाँ स्वतंत्र हैं, उन्मुक्त हैं। अज्ञेय की कविता में ऐसी भी रचनाएँ मिलती है जिनमें कहीं तो दूसरी, चौथी और छठी पंक्तियों के अंत में तुक मिल जाती है, कभी दूसरी, तीसरी, पाँचवी पंक्तियों के अन्त में तुक मिलती है, तो कहीं पहली, तीसरी, पाँचवी, सातवी पंक्ति के अंत में तुक मिलती है, या कभी प्रत्येक पंक्ति के अंत में तुक मिलती है। कवि की ऐसी रचनाएँ लय एवं तुक युक्त मुक्त छंद की श्रेणी में आती है।

1. मैंने देखा
   एक बूँद सहसा
   उछली सागर से
   रंग गयी क्षण भर
   ढ़लते सूरज की आग से

2. भोर का बावरा अहेरी
   पहले बिछाता है आलोक की

3. यह वह विश्वास, नहीं जो अपनी लघुता में भी काँपा,
   वह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयं उसी ने नापा,

(ii) लय एवं तुकहीन मुक्त छंद—कवि ने "अतुकांत" कविताएँ भी लिखी हैं जिनमें कहीं भी तुक नहीं मिलती, न ही कोई लय है और ना ही कोई क्रम। ये छंद पूर्णतया स्वतंत्र एवं उन्मुक्त है।

तुम्हारी देह
मुझको नानक-चम्पे की कली है
दूर ही से
स्मरण में भी गंध देती है।
(रूप स्पर्शातीत वह जिसकी लुनाई
कुहासे-सी चेतना को मोह ले।)

(iii) गद्यात्मक मुक्त छंद—कवि ने ऐसे मुक्त छंद भी पर्याप्त मात्रा में लिखे हैं जो पूर्णतया गद्यात्मक हैं। कवि की गद्यात्मक पंक्तियों में न लय है, न गति है, न प्रवाह है और न क्रमबद्धता है, अपितु ये पंक्तियाँ गद्य-वाक्यों की तरह लिखी गयी हैं।

क्षण भर हम न रहें रह कर भी
सुनें गूँज भीतर के सूने सन्नाटे में किसी दूर सागर की लोल लहर की
जिसकी छाती की हम दोनों छोटी सी सिरहन हैं—
जैसे सीपी सदा सुना करती है।

2.5. सारांश

अपने संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए, प्रेम की अभिव्यक्ति के अज्ञेय का प्रकृति के ऊपर आलंबन प्रत्यक्ष है। वे प्रकृति से प्रेम करते हैं, साथ ही अपने प्रणय प्रेमानुभूति की ओर मानवता के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति में भी वे प्रकृति के उपमानों पर आश्रित है।

अज्ञेय ने भाषा की दृष्टि से अनेक प्रयोग किए। भाषा और शिल्प के स्तर पर उनके विचारों में नव्यता दिखाई देती है। उन्होंने व्यक्ति की अंतर्संवेदाओं को व्यक्त करने के लिए नूतन शिल्प का विधान किया है। पुराने उपमानों को हटाकर नए उपमानों का संयोजन किया है। अज्ञेय के विचारों में बिम्ब, प्रतीक, मिथक लोकोक्तियों और मुहावरों के संयुक्त संयोग से भाषा के नव्य रूप का विस्तार हुआ है। यह कहने में अतिश्योक्ति न होगी कि अज्ञेय की भाषा में नए प्रयोगों से हिन्दी साहित्य में एक युग का आरम्भ हुआ है।

प्रश्नावली

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. अज्ञेय के प्रकृति प्रेम का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. अज्ञेय ने अपने काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष को नए प्रयोगों से नव्य कलेवर प्रदान किया है। विवेचना कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अज्ञेय के प्रकृति प्रेम भाव को स्पष्ट कीजिए।
2. अज्ञेय का मानवीय प्रेम मार्क्सवाद से प्रेरित है। स्पष्ट कीजिए।
3. अज्ञेय के काव्य में छंद-विधान का अवलोकन कीजिए।
4. अज्ञेय की कविताओं में अलंकार के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अज्ञेय के काव्य में किन्ही दो प्रतीकों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
2. अज्ञेय के काव्य में प्रकृति-प्रेम भाव के दो उदाहरण दीजिए।
3. अज्ञेय के काव्य में प्रणय-प्रेम को प्राकृतिक उपमानों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। उदाहरण दीजिए।

इकाई

3

अज्ञेय का काव्य सौष्ठव एवं आस्था और विश्वास

संरचना

3.1. अज्ञेय का काव्य सौष्ठव

3.2. अज्ञेय की अनुभूतिगत विशेषताएँ

3.3. अज्ञेय की अभिव्यक्ति सम्बन्धी विशेषताएँ

3.1. अज्ञेय का काव्य सौष्ठव

काव्य सौठष्ठव के मुख्य रूप से दो पक्ष होते हैं।

1. अनुभूति पक्ष या भाव पक्ष

2. अभिव्यक्ति पक्ष या कलापक्ष

अनुभूति या भाव पक्ष काव्य का आंतरिक गुण है। इसका संबंध कवि की सहृदयता और भावुकता से होता है। काव्य के शरीर तत्व को अभिव्यक्ति या कलापक्ष कहते है। इसका सम्बन्ध कवि की चतुरता और रचना कौशल से होता है। सरल शब्दों में कहें तो अनुभूति काव्य की आत्मा है और अभिव्यक्ति शरीर है जिसे कवि अलंकृत भाषा के आवरण से सजाता है। काव्य का अनुभूति पक्ष कवि की बाह्य परिस्थितियाँ एवं अपने विचारों के प्रति संवेदनशीलता है जिसका अनुभव वह आत्मा से करता है। कवि जब अपने इन विचारों को अपनी संवेदनशीलता को जब शब्दों में अभिव्यक्त करता है और भाषिक अलंकारों से अलंकृत करता है, तो वह काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष कविता के जीवन के लिए वैसे तो दोनों ही पक्ष, अनुभूति रस अभिव्यक्ति, दोनों ही महत्वपूर्ण हैं परन्तु काव्य की अनुभूति की अधिक महत्वता है क्योंकि जिस भाव के अभाव में काव्य निर्जीव हो जाता है।

अज्ञेय के काव्य का अनुभूति पक्ष या भाव पक्ष अज्ञेय कविता को आधुनिक भाव बोधों और संवेदनो का आघाट देते हैं। उनका कृत्तिव बहुआमी और गहन चिन्तन से परिपूर्ण है। उनकी कृतियाँ हमें अज्ञेय के आन्तरिक व्यक्तित्व, उनकी दृष्टि, उनकी सोच और उनके विचारों से परिचित हैं। इस संबंध में राजेन्द्र प्रसाद का मत है।

"किसी कृतिकार के आंतरिक व्यक्तित्व को जानने का यदि कोई विशेष माध्यम है तो वह है कवि का अपना रचना संसार। उनकी कृतियाँ ही मानों दर्पण हैं जिनमें कवि का अंतस प्रतिबिम्बित होता है। एक और कृति में जहाँ युग सत्य झाँकता है वहाँ दूसरी ओर कवि का अपना व्यक्तित्व सत्य भी उसमें निहित होता है।"

1.2. अज्ञेय की अनुभूतिगत विशेषताएँ निम्न है

1. प्रणयानुभूति— अज्ञेय के आरंभिक काव्य में प्रणय की वेदना स्पष्ट झलकी है। कवि प्राणय भावनाओं को वासनात्मक रूप में दर्शाया है। कवि के लिए संयोग के क्षणों की उन्मादकता एवं वियोग के क्षणों

का विरह ही प्राथमिक रहा है एवं कवि ने इन क्षणों को अपनी कृतियों में अत्यन्त कुशलता प्रादर्शित किया है। कवि के अपने शब्दों में "और प्रेम! एक थका-माँदा पक्षी, जो साँझ धिरी देखकर आशंका से भी मरता है और साहस संचित करके लड़ता भी जा रहा है। निराशा और कुँठा से धैर्यपूर्वक लड़ता हुआ किन्तु विश्वास की निष्कम्पा अवस्था से कुछ नीचे, आज के प्रेम का सर्वोतम सम्भव रूप यही है। अंधकार और आलोक का अनुक्रम, घृति और गति का सांमजस्य, वासना और विरह का संयोग, उदासी और खण्डन के बीच में विश्वास को मुक्त स्वर जो सबल कई बार हो उठता है पर निष्कम्प कभी नहीं होता।"

अज्ञेय के विचारों को प्रतिबिम्बित करतीं उनकी अपनी पंक्तियाँ—

1. "वे रोगी होंगे प्रेम जिन्हें अनुभव-रस का कटुप्याला है,

2. वे मुर्दे होंगे प्रेम जिन्हें सम्मोंहनकारी डाला है।

3. मैंने विदग्ध को जान लिया अन्तिम रहस्य को पहचान लिया।

4. मैंने आहुति बनकर देखा यह प्रेम यज्ञ की ज्वाला है।

2. व्यक्तिनिष्ठा—कवि अज्ञेय की कविताओं में सबसे अधिक एक व्यक्तिनिष्ठा कवि का रूप दिखाई देता है। वहाँ न वह क्रान्तिकारी है और न समाज-विद्रोही, अपितु संसार के आकर्षण में आबद्ध एक व्यक्ति है, जो कभी प्रकृति की रमणीयता में शान्ति का अनुभव करता है, तो कभी समाज की विविध समस्याओं में उलझा हुआ जान पड़ता है। इसी कारण वह पुकार उठता है—

मैं कवि हूँ
द्रष्ट, उन्मेष्ट।
संघाता
अर्थवाद
मैं कृतव्यय।

इतना ही नहीं, कवि जब सायंकाल के सूने गगन में अकेली डोलती बाजरे की कलगी को देखता है, तब इस सृष्टि का खुला वीराना घना होकर उसके पास सिमट आता है और वह एकान्त समर्पित हो जाता है—

या शरद की साँझ के सूने गगन की पीठिका पर
डोलती कलगी अकेली बाजरे की
और सचमुच, इन्हें जब-जब देखता हूँ
यह खुला वीराना संसृति का घना ही सिमट आता है–
और मैं एकान्त होता हूँ समर्पित।

अपनी इसी व्यक्तिनिष्ठा के कारण वह रात्रि के क्षणों में छिटकती हुई चाँदनी में अपने अन्त:स्पंदन को क्षणभर जीने का आग्रह करता हुआ कहता है—

ओ प्रिय रहो साथ,
भर-भर तर अँजुरी
पी लो
बरसी
शरद चाँदनी

मेरा

अन्तः स्पंदन

तुम भी क्षण-क्षण जी लो!

3. क्षणानुभूति— कवि अज्ञेय ने एक क्षण की अनुभूति को अत्यन्त महत्व दिया है। इसी कारण अन्य प्रयोगवादी कवि भी क्षणानुभूति को अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं। कवि जीवन के प्रत्येक क्षण को अमोघ मानता है, अज्ञेय समझता है और स्वतन्त्र एवं स्वच्छंद बताता है। इसलिए कहता है—

क्षण अमोघ है,

इतना मैंने

पहले भी पहचाना है,

इसलिए साँझ को

नश्वरता से नहीं बाँधता।

कवि एक क्षण की सम्पूर्ण अनुभूति को आकुल-व्याकुल होकर पी जाने के लिए छटपटाता रहता है। वह उस अनुभूति को शब्दों के घेरे में बाँधकर रखना चाहता है, वह उस क्षण के सत्य का सुरभिपूत स्पर्श पाना चाहता है, वह उस क्षण के आलोक से संप्रक होकर विभोर हो जाना चाहता है, वह उस क्षण के जीवन को ही सर्वाधिक महत्व देता है और पुकार उठता है—

सत्य का सुरभिपूत स्पर्श हमें मिल जाय

क्षण भर :

एक क्षण उसके आलोक से संयुक्त हो

विभोर हम हो सकें

और हम जीना नहीं चाहते।

4. जिजीविषा की भावना — कवि अज्ञेय की कविताओं में जीवित रहने की इच्छा भी अधिक तीव्रता एवं तीक्ष्णता के साथ व्यक्त हुई है। आज मानव एक ऐसे भयंकर चक्रवात में फँसा हुआ है कि उसका जीवन दूभर हो रहा है, वह अगणित समस्याओं के घेरे में आबद्ध हैं, उसे जीवन की अनेक उलझनों ने अत्यन्त जटिल जाल में फाँस लिया है और वह जीवित रहने के लिए तड़प रहा है। कवि ने आधुनिक मानव की इसी तडपन, इसी आकुलावस्था एवं इसी उलझन भरी स्थिति का चित्र अंकित करने के लिए तथा जिजीविषा की धारणा को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए 'मछली' को प्रतीक बनाया है और 'बना दे चितरे', 'सोन मछली', 'मछलियाँ', 'जीवन छाया', 'टेर रहा सागर' आदि कविताओं में इस जिजीविषा की भावना को इस तरह व्यक्त किया है—

बना दे, चितेरे

मेरे लिए एक चित्र बना दे।

× × ×

पहले सागर आँक

× × ×

सागर आँक कर फिर आँक एक उछली हुई मछली,

× × ×

ऊपर अधर में
हवा का एक बुलबुला-भर पीने को
उछली हुई मछली,
जिसकी मरोड़ी हुई देह-वल्ली में
उसकी जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है।

5. आर्थिक असमानता— आज मानव कुण्ठा एवं पीड़ा का ऐसा शिकार बना हुआ है कि उसका जीना दूभर हो रहा है। ये कुण्ठायें, घुटन एवं बेवसी मानव को रात-दिन संत्रस्त कर रही हैं, उसे चैन से बैठने नहीं देती, उसके मस्तिष्क में हलचल पैदा करती रहती हैं, उसे भ्रष्टाचार एवं अनाचार के लिए प्रेरित कर रही हैं, उसके मानसिक सन्तुलन को बिगाड़ रही हैं, उसके हृदय में क्षोभ एवं आक्रोश पैदा कर रही हैं, उसे झूठ बोलने के लिए विवश कर रही हैं और उसे चोरी, मक्कारी एवं अन्य दुष्कर्मों की ओर प्रवृत्त कर रहीं हैं। इन सबका कारण है, आर्थिक असमानता एवं विषमतायें। ये विषमतायें आज मानव को केवल संत्रस्त ही नहीं करतीं, अपितु उसे धातु की तरह समाज की भट्टी में गला रही हैं, तभी तो कवि पुकार उठा है—

भीतर जलते लाल धातु के साथ
कामकरों की दुस्साध्य विषमतायें भी उबलती जाती हैं
..... ये मुँहझोंसी चिमनियाँ बराबर
धुँआ उगलती जाती हैं।

इन्हीं आर्थिक असमानता एवं विषमताओं ने आज मानव के हृदय में प्रतियोगिता की भावना जाग्रत की है और दुर्बल एवं असहाय व्यक्तियों के हृदय में पूँजीपतियों एवं धनाढ्यों के प्रति तीव्र घृणा पैदा की है, जिसे कवि अपने शब्दों में इस तरह व्यक्त करता है—

तुम जो बड़े-बड़े गद्दों पर, ऊँची दूकानों में,
उन्हें कोसते हो जो भूखे मरते हैं खानों में,
तु, जो रक्त चूस ठठरी को देते हो जलदान,
सुनों तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान!

6. क्रान्ति की भावना — कवि ने समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता एवं विषमता के प्रति आक्रोश, क्षोभ एवं घृणा ही व्यक्त नहीं की है, अपितु इस असमानता को मिटाने के लिए रक्तमयी क्रान्ति का भी आह्वान किया है, इन विषमताओं को दूर करने के लिए संघर्ष की प्रेरणा भी प्रदसकी है तथा इस भयंकर वैषम्य को हटाने के लिए 'अग्नि धर्म' को मानने के लिए प्रेरित किया है। इसलिए कवि की हुंकार इन शब्दों में व्यक्त हुई हैं—

हमने न्याय नहीं पाया है, हम ज्वाला से न्याय करेंगे –
धर्म हमारा नष्ट हो गया, अग्निधर्म हम हृदय धरेंगे।

यह 'अग्निधर्म' और कुछ नहीं, सामाजिक क्रान्ति का आह्वान है, रक्तपूर्ण संघर्ष का आह्वान है, जन-आन्दोलन की प्रेरणा है और उन कामगरों, मजदूरों एवं श्रमजीवियों को जाग्रत करने वाला धर्म है, जो रात-दिन अपने शरीर को होम करके भी भरपेट भोजन नहीं पाते, जो गरीबी का शिकार बने हुए हैं, जिनको श्रम का मूल्य पूरा-पूरा नहीं मिलता, जिनकी कमाई पर धनिक लोग गुलछर्रे उड़ा रहे हैं और जिनका रक्त चूस-चूस कर समाज के ठेकेदार कोठियों एवं हवेलियों में शान के साथ विलास-क्रीड़ा करते रहते हैं। इसलिए अज्ञेय का कवि इस विषमता के अन्धकार को मिटाकर समानता का आलोक प्राप्त करने के लिए पुकार उठा है—

कवि एक बार फिर गा दो,

एक बार इस अन्धकार में फिर आलोक दिखा दो।

7. नूतन सौन्दर्य बोध —कवि ने जहाँ सामाजिक जीवन में व्याप्त कुण्ठा, निराशा, बेबसी, घुटन, विषमता आदि के गीत गाये हैं, वहाँ नूतन सौन्दर्य-बोध को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। कवि परम्परावादी नहीं है। वह नवीनता का पुजारी है। इसी कारण उसे सौन्दर्य-चित्रण की प्राचीन पद्धति, पुरातन शैली, परम्परागत प्रणाली आदि अच्छी नहीं लगती। उसे पुराने उपमान मैले दिखाई देते हैं, पुराने प्रतीक निर्जीव जान पड़ते हैं और पुरानी पद्धति व्यर्थ एवं निस्सार प्रतीत होती है। इसलिए वह जब अपनी प्रेयसी के रूप-सौन्दर्य की झाँकी अंकित करना चाहता है, तब वह पुकार उठता है—

अगर मैं तुमको
लजाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार-न्हाई हुई,
टटकी कली चम्पे की
बगैरह, तो
नहीं, कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यही।
ये उपमान मैले हो गये हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूँच ।

इसलिए कवि जब सौन्दर्य का चित्र अंकित करना चाहता है, तब वह प्राचीन उपमानों, पुराने प्रतीकों एवं पुरानी पद्धति का प्रयोग नहीं करता; अपितु एकदम नवीन पद्धति को अपनाता हुआ सौन्दर्य-चित्र इस प्रकार अंकित करता है—

अगर मैं यह कहूँ—
बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की ?

कवि को यह प्रतीक कहीं अधिक सच्चा प्रतीत होता है, यह उपमान कहीं अधिक प्यारा जान पड़ता है और इसलिए अपनी प्रियमता के नेत्रों एवं होठों का सौन्दर्य चित्र देता हुआ कहता है—

तुम्हारे नैन
पहले भोर की दो ओस-बूँदें हैं
अछूती, ज्योतिमय
भीतर द्रवित।
(मानो विधाता के हृदय में जग गई हो भाव करूणा की अपरिमित।)
तुम्हारे ओठ –
पर उस दहकते दाड़िम पुहुप को
मूक तकता रह सकूँ मैं—
(सह सकूँ मैं ताप ऊष्मा का, मुझे जो लील लेती है!)

8. आध्यात्मिकता— कवि अज्ञेय ने जहाँ मानव-जीवन के बारे में चिन्तन-मनन करते हुए आधुनि जीवन में व्याप्त विषमता, कुण्ठा, निराशा, क्षोभ, जिजीविषा आदि का चित्रण किया है, वहाँ आत्मा एवं परमात के बारे में चिन्तन-मनन करते हुए आत्मा को परिणीता वधू एवं परमात्मा को महाशून्य के रूप में स्वीकार कि है। कबीर की तरह आत्मा एवं परमात्मा के विवाह का चित्रण करते हुए कवि अज्ञेय कहते हैं—

अरी ओ आत्मा री,
कन्या भोली क्वाँरी
महाशून्य के साथ भाँवरें तेरी रची गयी।
× × ×
जा आत्मा, जा
कन्या-वधुका-
उसी अनुगा,
वह महाशून्य ही अब तेरा पथ
लक्ष्य, अन्न-जल, पालक-पति,
आलोक, धर्म
तुझको वह एक मात्र सरसायेगा
ओ आत्मा री
तू गयी वरी
ओ सम्पृक्ता,
ओ परिणीता;
महाशून्य के साथ भाँवरे तेरी रची गयीं।

बौद्ध-धर्म के अनुयायी होने के कारण कवि ने परमात्मा को 'महाशून्य' के रूप में ही स्वीकार किया है साथ ही उसे तेजोमय, एकाकी, परम शीतल, तीव्र गतिमय आदि भी माना है—

अकेला :
वह तेजोमय हैं जहाँ,
दीठ बेबस झुक जाती है,
वाणी तो क्या, सन्नाटे तक की गूँज
वहाँ चुक जाती है
शीतलता उसकी एक छुअन-भर से
सारे रोमांच शिलित कर देती हैं,
मन के दुत रथ की अभिश्रान्त गति
कभी नहीं उसका पदनख तक परिक्रन्त कर पाती हैं।

इतना ही नहीं, कवि जहाँ महाशून्य के रूप में परमात्मा की कल्पना करता है, वहाँ वह गौतम बुद्ध क करूणा पारमिता से भी प्रभावित हुआ हैं, जो सब कुछ धारण करने वाली हैं —

– या कि लाँधकर ही उसको
पहुँचा जावेगा

सब कुछ धारण करने वाली पारमिता करूणा तक—
निर्वैयक्तिक प्यार तक ?

इसके साथ ही कवि सम्पूर्ण जगत को भी शून्य मानता है, जो महाशून्य से ही प्रकट हुआ है अन्त में महाशून्य में ही विलीन हो जाता है। इस तरह 'सर्व शून्य शून्यम' के सिद्धान्त को मानते हुए कवि ने लिखा है—

न कुछ में से वृत्त यह निकला कि जो फिर
शून्य में जा विलय होगा :
किन्तु वह जिस शून्य को बाँधे हुए है—
उसमें एक रूपातीत ठंडी ज्योति है।

इसी तरह कवि ने उस 'महाशून्य' को महामौन, अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय एवं शब्दहीन माना हैं; मगर फिर भी वह सब कुछ गाने वाला है, अन्धकार में ज्योति जगाने वाला है, करूणा-धाम होने के कारण सभी प्राणियों पर करूणा करता है, वह अरूप होकर भी संसार के सभी रूपों में खिलता है, अगोचर होकर भी संसार के पदार्थों में गोचर होता है, अनुभव में अतीन्द्रिय है और पुरूषों के हर वैभव में ओझल अपौरूषेय है—

रूपों में एक अरूप सदा खिलता है,
गोचर में एक अगोचर, अप्रमेय,
अनुभव में एक अतीन्द्रिय,
पुरूषों के हर वैभव में ओझल
अपौरूषेय मिलता है।

9. प्रकृति-प्रेम — कवि अज्ञेय ने प्रकृति-सुन्दरी के प्रति अगाध प्रेम एवं अनन्य आस्था प्रकट करते हुए उसके विविध रूपों की झाँकियाँ अंकित की हैं। कवि को प्रकृति के अन्तर्गत एक चेतना का आभास मिला है, जिसके फलस्वरूप उसे कभी तो सागर मतियाना जान पड़ता है, पवन तरंग की पंख युक्त वीणा पर उमंग से गाती हुई जान पड़ती है तथा सागर का किनारा झूमता हुआ एवं डगमगाता जान पड़ता है। ऐसे ही घाटी की पगडंडी लजाई और ओट हुई, पर चंचला रह न सकी फिर उसकी ओर झाँक गयी दिखाई देती है, कचनार की कली हँसती जान पड़ती है, वनस्थली वधू बनी दिखाई देती है, तारे ऊँघते दिखाई देते हैं, सरसी सिहरती जान पड़ती है, कुमुद अपलक ताकते प्रतीत होते हैं और सूनी साँझ दबे पाँव कमरे में आती हुई जान पड़ती है। इस तरह कवि ने प्रकृति के सचेतन रूप का चित्रण बड़ी तत्परता के साथ किया है। जैसे, एक सूनी-साँझ का चित्र देखिए —

सूनी-सी साँझ एक
दबे पाँव मेरे कमरे में आयी थी।
मुझ को वहाँ देख
थोड़ा सकुचायी थी।
तभी मेरे मन में यह बात आयी थी
कि ठीक है, यह अच्छी है
उदास है। पर सच्ची है,
इसी की सांवली छाँह में कुछ देर रहूँगा।
इसकी साँस की लहर पर बहूँगा।

चुपचाप इसी के नीरव तलुओं की
लाल छाप देखता
कुछ नहीं कहूँगा।

कवि ने प्रकृति के साथ तादात्म्य भी स्थापित किया है। इसलिए वह सोते के साथ बहना पसन्द करता है, पक्षियों के साथ गाना पसन्द करता है, वृक्षों और कोपलों के साथ थरथराना पसन्द करता है। कवि प्रकृति के साथ गलकर नया जीवन और नये प्राण पाता है —

मैं सोते के साथ बहता हूँ,
पक्षी के साथ गाता हूँ;
वृक्षों के, कोपलों के साथ थरथराता हूँ;
और उसी अदृश्य क्रम में, भीतर-ही-भीतर
झरे पत्तों के साथ गलना और जीर्ण होता रहता हूँ,
नये प्राण पाता हूँ!

साथ ही कवि ने प्रकृति के अनिंघ सौन्दर्य की रमणीय झाँकियाँ भी अंकित की हैं। प्रकृति से प्रेरणा ली है और उसे सचेत एवं सावधान करने वाली दैवी शक्ति के रूप में भी देखा है। तभी कवि 'वसन्त-गीत' में गा रहा है —

जागो, जागो,
जागो, सखि, वसन्त आ गया! जागो!
पीपल की सूखी खाल स्निग्ध हो चली,
सिरिस ने रेशम से बेणी बाँध ली,
नीम के भी बौर में मिठास देख
हँस उठी है कचनार की कली!
टेसुओं की आरती सजा के
बन गई वधू वनस्थली!

इसी प्रकार के अनेक संश्लिष्ट चित्र कवि ने अंकित किए हैं, जिनमें प्रकृति के मादक सौन्दर्य की छटा छिटक रही है तथा जिनमें कवि के प्रकृति प्रेम का अविरल स्त्रोत प्रवाहित हो रहा है।

10. स्वदेशानुराग — कवि का हृदय अपने देश के कण-कण में रमा हुआ है। उसे यहाँ की डगर-डगर से प्यार है, गाँव-गाँव में उसकी भावना रम रही है, शहर-शहर में उसके विचार मँडरा रहे हैं और झोंपड़ी से लेकर हवेली तक वह अपने देश से परिचित है। वह जानता है कि यहाँ किस तरह के छप्पर के नीचे दुबले-पतले लोग सिकुड़कर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं और वह यह भी जानता है कि किस तरह विषैली वासना के साँप का जहर मोटे-मोटे पूँजीपतियों की रग-रग में फैल रहा है, जिसके फलस्वरूप वे हवेली में नहीं समाते और इधर-उधर टाँग फैलाते हैं। कवि ने इसी स्वेदशानुराग से प्रेरित होकर एक कटु व्यंग्य लिखा है, जिसमें देश की स्थिति कितनी स्पष्ट हो गई हैं —

इन्ही तृण-फूस-छप्पर से
ढके ढुलमुल गँवारू
झोंपड़ों में ही हमारा देश बसता है।
इन्हीं के ढोल-मादल-बांसुरी के

उमगते सुर से
हमारी साधना का रस सरसता है।
इन्हीं के मर्म को अनजान
शहरों की ढँकी लोलुप
विषैली वासना का साँप साँप डसता है।
इन्हीं में लहरती अल्हड़
अयानी संस्कृति की दुर्दशा पर
सभ्यता का भूत हँसता है।

इसी प्रकार कवि ने 'साँप', 'रेंक' आदि कविताओं में तीक्ष्ण एवं अनूठे व्यंग्यों के माध्यम से अपने देश की स्थिति एवं देशवासियों की मनोवृत्ति का चित्रण करते हुए स्वदेशानुराग प्रकट किया है। कतिपय प्रतीकात्मक कवितायें भी ऐसी लिखी हैं, जिनके माध्यम से वर्तमान राजनीति पर भी अपने विचार व्यक्त किए है। जैसे, 'इतिहास की हवा' नामक कविता में बागड़ी जाति का प्रतीक 'एकलव्य' बनाकर और 'द्रोणाचार्य' को वर्तमान राजनीतिज्ञ का प्रतीक बनाकर आधुनिक राजनीतिक जीवन की और संकेत किया गया है। इस तरह कवि अज्ञेय की भावानुभूति का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि वे प्रणयानुभूति से लेकर स्वदेशानुराग तक विविध आयामों से गुजरे हैं। परन्तु उनकी भावानुभूति मुख्यत: आत्मोन्मुखी है। जन-जीवन से उन्हें विशेष प्यार है, किन्तु आत्मान्वेषण एवं आत्मानुभूति की ओर उनका विशेष झुकाव रहा है। उन्होंने आन्तरिक एकान्त से निकल कर प्रकृति के विराट् क्षेत्र में विखरण किया है। वे सर्वव्यापी, चिरन्तन, सम्पूर्ण रूपों में व्याप्त अरूप, अनाम, अगोचर एवं महाशून्य रूपी महान सत्ता की और उन्मुख हुए हैं। बौद्ध-धर्म से प्रभाहित होने के कारण उनमें करूणा, मैत्री, मानवता-प्रेम आदि के साथ-साथ समर्पण की भावना का आधिक्य होता चला गया।

1.3. अज्ञेय की अभिव्यक्ति सम्बन्धी विशेषताएँ

भाषा एवं शब्द-योजना—अज्ञेय के काव्य में वैसे तो प्राय: शुद्ध, साहित्यिक एवं परिनिष्ठित खड़ीबोली हिन्दी भाषा का प्रयोग हुआ है; किन्तु उनकी इस भाषा में विविधता के दर्शन होते है। इसलिए कहीं कवि संस्कृतनिष्ठ तत्सम-शब्द प्रधान भाषा का प्रयोग करता हुआ 'विशद श्वासाहत चिरातुर', 'चेतना अन्तर्मुखी स्मृति लीन', 'निर्गन्धा इव किशुंका', 'चरम द्वन्द्व आत्मा निस्संबल', 'अरि गोपित मायावी', 'व्रज अनजाने अप्रसूत असन्धीत', 'गोचर में एक अगोचर अप्रमेंय', 'उस एक अनिर्वच छन्द-मुक्त को', 'द्रष्टा उन्मेष्टा', 'संधाता', 'अर्थवाह', 'ताप-शुभ्र केन्द्र-वृत्त में' आदि पूर्णतया संस्कृतमयी पदावली में कविता रचता है। कहीं वह अत्यन्त सरल, सुबोध एवं तद्भव शब्द-प्रधान सीधी-सादी भाषा का प्रयोग करता हुआ और दे भी क्या सकता हूँ हवाला, 'मलय का झोंका बुला गया', 'वो रोम-रोम को कँपा गया', 'कैसी वाट', 'भरोसा किनका', 'धमनियों में उमड़ आयी हैं लहू की धार', 'बुझी फीकी चाँदनी में दिखे शायद', 'न शायद चेत हो', 'मैं हूँ वह डगर', 'जला देता है मुझे', 'नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है' या कि मेरा प्यार मैला है, 'तुम्हारे नैन पहले भोर की दो ओस बूँदें हैं' जैसी अत्यन्त सुबोध एवं सुगम पदावली में कवितायें लिखता है और कही ग्राम्य एवं देशज शब्दावली-युक्त नूतन एवं नवीन पदावली का प्रयोग करता हुआ 'मतियाया सागर लहराया', 'आकाश के भाल पर जय-तिलक आँक गई', 'गर तूने पहचान लिया हैं', 'रूआँसी एक सहेली होगी', 'बोध को ही आँज जाती हैं', 'भोर की नीहार-न्हाई कुई' 'एक बार बेझिझक देख लो' 'अँजुरी भरकर पीलो', 'कहो हाथ पाहुन मनमाने' आदि देशज बोलचाल से भरी हुई पदावली से अपनी कविता को सजाता है।

इस तरह कवि की भाषा में शब्दों की विविधता के भी दर्शन होते हैं। कवि ने कहीं तो शुद्ध, संस्कृतनिष्ठ, अभिजात तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे, वनस्थली व्योम, दिग्दिगन्त, दुरन्त, मधु-दूत, सृजन, दिग्मंडल, स्पन्दन, सृष्टि, स्रष्टा, उर्ध्वग, दुदर्विवार, श्वासाहत, चिरातुर, उत्तप्त, अभिशप्त, शास्त्र-संगत, भवि

तव्य, उत्फुल्ल, धारयित्रि, निर्जज्ज, पूर्णिमा, तमिस्रा, निःसम्बल, रूद्ध स्फीत, संचयित संज्ञा, सूक्ष्मतम स्पन्दन, गात्र, परिक्रान्त, उत्सृष्ट, स्पर्शतीत, अपराजिता, अनावृत्ता, स्वयमभाव, अस्मिता, इयत्ता, समिधा, स्वयम्भू, ब्रह्म, असुत, उल्लम्ब-बाहु तरंगोर्मियाँ अखण्ड शौर्य, जिजीविषा, तडिल्लता, अप्रसूत, विद्युल्लता, उदीषा, प्राणाकाश, उदग्र, आहूत, पुष्पिताग्र, अपौरूषेय, क्षूप, नीरन्ध्र, उन्मेष्टा, कृतव्यय, चक्रान्त आदि।

ऐसे ही कवि ने अपनी अभिव्यंजना को अधिकाधिक सर्वजनसुलभ, सर्वजनग्राह्य एवं सर्वजनप्रिय बनाने के लिए कहीं-कहीं कहीं-कहीं देशज, ग्राम्य एवं बोलचाल में प्रयुक्त शब्दों को अपनाया है। जैसे, अंजरी, कलस, तिसूल, करीं, कलौंस, नोकी, कनियाँ, तलैया, आड़ी, जोखम, छोरियाँ, घिरघा, कौंध, लहू, आलते, छौने, गलियारे, गोख, थिगली, फिरकी, लुगाई, छीमी, तूमड़ी, गुर, लुनाई, छुअत, ओट, कनवतियाँ, दूह, ठीकरा, पालागन, ओक, खुदबुद, अपने तई, पूनो, फुदकी, गोरियाँ, तेरस, चीन्ह, बाँह, न्हयाई, सीठी, पाहुन आदि।

इसी प्रकार कवि ने कहीं-कहीं बोलचाल में प्रयुक्त अन्य भाषाओं के शब्दों को भी यथास्थान अपनाकर अपनी भाषा को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया है। इसलिए कवि ने कितने ही अंग्रेजी के लोकप्रचलित शब्दों को अपनी भाषा में स्थान दिया है। जैसे कलैण्डर, फ्रेम, पार्क आदि। इसी तरह कवि ने कतिपय उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी यथास्थान किया है। जैसे, इजहार, जोखम, हवाला, दाग, शायद, चाँद, बगैरह; जादू, वीरान, मुलाकात आदि।

कवि की पद योजना में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने एक ओर तो कितने ही देशज क्रियापदों का प्रयोग किया है, जिनसे कविता में स्थानीय प्रभाव के साथ-साथ लोक-जीवन का स्पर्श आ गया है। जैसे, गोड़ गये, चेत उठी, बेध गयी, घुमड़ती, कसमसाती, बुझी, ललकेगा, झपट जाती, जाँच जाती, लहलहाती, लजाती, अनकहनी, अगोरता, दिपता-झिपता तकता, पसारता, लखता, निहारता, हरसाता, आँकता, विलमता आदि। इतना ही नहीं कवि ने दूसरी ओर भाषा को नूतन प्रयोग से समृद्ध बनाने के कितनी ही नई क्रियाओं का निर्माण किया है। जैसे—अनुकूलो, स्वीकारों, झड़डाता असीसूँगी, बसियाता, मतियाता, हकलाता, रीतता, समोता, उकेरता आदि। ऐसे ही कवि ने कतिपय नये-नये विशेषणों को अपनाकर अपनी भाषा को नूतनता एवं प्रयोगशीलता से परिपूर्ण बनाया है। जैसे, बेटूट दुखी रेत, मुखर-तपती वासनाएँ, स्वीकारी आँसू, शिलित रोमांच, उर्ध्वग ज्वाल, कच्ची वासना, बुझी-फीकी चाँदनी, लजाती साँझ, धुँधुआता कडुवा तम, अस्पर्श छुअन, लम्बे बिल, क्षण, चिकना मौन आदि।

इस प्रकार कवि ने अपनी भाषा को भावों एवं विचारों के अनुकूल ढ़ालने के लिए विविध प्रकार के शब्दों से अलंकृत एवं सुसज्जित किया है। परन्तु कवि की शब्दावली में संस्कृतमयता का बाहुल्य होने के कारण अभिजात्य की गन्ध आती है। कहीं-कहीं अप्रचित एक दुरूह पदावली का प्रयोग होने के कारण कविता भी अस्वाभाविक एवं कृत्रिम जान पड़ती है और कहीं-कहीं 'पारमिता', 'युगनद्ध' जैसे पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग के कारण भाषा में दुर्बोधता एवं दुरूहता भी आ गई है। कतिपय नूतन प्रयोगों के फलरूवरूप भी कवि की भाषा कृत्रिम, अस्वाभाविक एवं दुरूह हो गई है।

2. लाक्षणिकता—कवि ने अपने काव्य में लाक्षणिकता लाने के लिए एक ओर तो मुहावरों एवं लोकोत्तियों का प्रयोग किया है और दूसरी ओर ऐसी पदावली का प्रयोग किया है, जो अभिधेयार्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ एवं सांकेतिक अर्थ की द्योतक है। जैसे—कैसी बाट, भरोसा किनका, नभ में एक मचा दे हलचल, तुझको पथ से हेर रहा है, गुर तूने पहचान लिया है, धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार, फूट निकला स्वर्ग का आलोक, देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूँच, अनबूझ पहेली होगी, बोध को ही आँज जाती है, मूक ताकता रह सकूँ मैं, ताप ऊष्मा का मुझे जो लील लेती है, क्रान्ति को आँखों में समेट लो, शरद चाँदनी बरसी, अँजुरी भरकर पी लो, ऊंघ रहे हैं तारे, ऐसी आग हठीली विरला सुलगायेगा, दिन-दिन पर उसकी उसकी घिग्घी, बैंघती जाती थी मेंडों पर छाग छौन के किलोलते, 'डुकरा कर हड्डी-पसली तोड़ गये, जीवन मुझको सौप

गये, ढ़लती उमर को दाग उसने धो दिये, दबे पाँव मेरे कमरे में आयी थी, भूल गया था मैं क्षण भर के ताकना, आँचल पसार कर लेना, अनगिनत पैरों तले रौंदी हुई अविराम, फिर भी घाव अपने आप भरती, रिसता हुआ गड्ढ़ा भर गया, वह जिस शून्य को बाँधे हुए है, साध आज मेरे जीवन की पूरी होगी, मैं तो डूब गया था स्वंय शून्य में, सब अपने-अपने काम लगें आदि पक्तियों में मुहावरों के माध्यम से लाक्षणिकता का सृजन हुआ है।

ऐसे ही कवि के अन्य कितने ही ऐसे लाक्षणिक प्रयोग मिलते हैं जिनमें अभिधेयार्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ ने नूतन भाव-गम्भीर्य एवं अर्थ-सौष्ठव की सृष्टि की है। जैसे, 'मलय का झोंका बुला गया', 'सिरिस ने रेशम से वेणी बाँध ली, हँस उठी है कचनार की कली, बन गई वधू वनस्थली, स्नेह-भरे बादलों से व्योम छा गया, प्यार ही में यौवन है यौवन में प्यार, 'ऊषा प्राची में', 'मिट्टी को तूने बाँध लिया है', 'फूट निकला स्वर्ग में प्यार', 'ऊषा जाग उठी प्राची में, मिट्टी को तूने बाँध लिया है, फूट निकला स्वर्ग का आलोक, धारायित्रि सत्य सी निर्लज्य नंगी और समर्पित स्मृति की सूखी सज्जा रूआँसी एक सहेली होगी, अँधेरे में ज्वार ललकेगा', आलोक फीका सोख लेता है', ये उपमान मैले हो गये है' तुम्हारी देह स्मरण में भी गंध देती है', 'अस्मिता इयता की ज्वाला अपराजिता अनावृत्ता', 'उठी ललक, हिय उमंगा, अनकहनी, अलसानी जगी लालसा मीठी' 'यह दीप अकेला स्नेह भरा है गर्व भरा मदमाता,' पवन के थपेड़ों से आहत सागर, दूर धुधँला किनारा झूम-झूम आया डगमगाया किया', 'घाटी की पगडंडी लजायी और ओट हुई' छनी हुई धूप की सुनहरी कनी को बीन', 'सूने गलियारों की उदासी', बाँझ अनुकम्पा समाज की कितनी बोझल हो गई आदि पक्तियों में लाक्षणिक सौन्दर्य विद्यमान है।

3. **प्रतीकात्मकता**—कवि ने अपनी कविता में ऐसे कितने ही प्रतीको का प्रयोग किया है, जो अपने सहज एवं वास्तविक अर्थ को खोकर केवल एक निदिष्ट अर्थ की प्रतीति कराने में सर्वथा समर्थ जान पड़ते हौइन प्रतीकों में नवीनता के साथ-साथ आध्यात्मिकता भी है। इन प्रतीकों को तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम वर्ग में वे प्रतीक आते है, जिनका सम्बन्ध कवि के निजी जीवन से है और जिन्हें 'आत्म प्रतीक' कह सकते हैं। जैसे, 'हारिल' पक्षी कवि के निजी जीवन से है और जिन्हें 'आत्म प्रतीक' कह सकते हैं। जैसे, 'हारिल' पक्षी कवि की दुर्दम सर्जनेक्ष्छा का प्रतीक है, हारिल के पंजे में दबा हुआ जिनका सृजन के यत्किचित् साधन का प्रतीक है, 'नन्हीं शिखा वासना का प्रतीक है,' 'दीप' इयत्तापूर्ण अस्मिता का प्रतीक है, 'तरेगोर्मियों सहित अथाह सागर जीवन और उसके संघर्षों का प्रतीक है, उछली मछली जिजीविषा एवं उदीषा का प्रतीक है, 'ऊपर का आकाश और बुलबुला' उदात्त जीवन-मूल्य का प्रतीक है, रेत के अन्तर्गत विलुप्त नदी कवि की व्यथापूर्ण उदार भावना का प्रतीक है और 'हरी घास' व्यापक जीवन का प्रतीक है।

दूसरे वर्ग में वे प्रतीक आते हैं, जिनका सम्बन्ध कवि की प्रेम-भावना से है उन्हें 'प्रेम सम्बन्धी प्रतीक' कहा जा सकता है। जैसे, 'ज्वार' प्राय: मनोद्वेलन का प्रतीक है, 'कसमसाता रूद्ध सागर' कुण्ठा एवं घुटन से भरे हुए हृदय का प्रतीक है, 'कुमुद' प्रेमी का प्रतीक है झील का निर्जन किनारा वियोग का प्रतीक है, उदास साँझ असफल प्रेम का प्रतीक है 'सूनी-सी साँझ' असफल प्रेमिका का प्रतीक है और 'उस सलौनी सूनी साँझ के पीछे-पीछे घुस आयी बिजली की बत्तियाँ या मनुष्यों की खड़ी-खड़ी बोलियाँ उन प्रतिस्पर्द्धा या ईर्ष्या करने वाली नारियों की प्रतीक हैं, जो दो प्रेमियों के मिलन में बाधा उत्पन्न किया करती हैं, ऐसे ही 'अन्तरंग चेहरा' में हेरते, अगोरते दो लोचन सम्पूर्ण सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने वाले कवि के उस प्रेम के प्रतीक हैं; जिसमें उस सृष्टि के समस्त चेहरों का निजीपन केन्द्रित जान पड़ता है।

तीसरे वर्ग में 'वे सांस्कृतिक' प्रतीक आते हैं, जिनका सम्बन्ध कवि की ऐतिहासिक वैज्ञानिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा से है। जैसे, इतिहास की हवा नामक कविता में एकलव्य आज के बर्बर मनुष्य का प्रतीक है, 'द्रोणाचार्य' आधुनिक राजनीतिज्ञ का प्रतीक है, मुनिजन मछलियाँ बुद्धिमान मनुष्यों की प्रतीक है और भोले बालक अणु-बम से मृत जनसमूह एवं मानव-भवितव्य के प्रतीक हैं। 'बाबरा अहेरो' सूर्य का प्रतीक है, 'चक्रान्तशिला' कविता खण्ड में 'क्वारी कन्या' आत्मा का प्रती है, 'महाशून्य' अप्रेमय एवं

अगोचर सत्ता का प्रतीक है, 'अनुराग से' दुलारती किरण ईश्वरीय अनुकम्पा का प्रतीक हैं, 'काले-घोल शून्य की प्रतीक है, 'गहरी वापिका' विराट की प्रतीक है और 'लघु अंजली' आत्मा का प्रतीक है। 'असाध्या वीणा' में वीणा आत्मा का प्रतीक है और 'वीणा की ध्वनि' उस अविभाज्य, अनाप्त, अप्रमेय एवं शब्दहीन महाशून्य के संगीत की प्रतीक है, जो सर्वत्र व्याप्त है।

4. बिम्ब-विधान — कवि अज्ञेय ने विविध प्रकार के बिम्बों द्वारा अपनी अभिव्यक्ति को बनाया है, अपनी उक्तियों को सजाया है और अपने कथन को अधिकाधिक रोचक एवं मनोरंजक बनाया है। कवि ने चारों प्रकार के बिम्बों का प्रयोग किया है, जो ऐन्द्रिय बिम्ब, वस्तुपरक बिम्ब, भाव-बिम्ब और आध्यात्मिक बिम्ब कहलाते हैं। जैसे, कवि ने ऐन्द्रिय बिम्बों की योजना करते हुए दृश्य-बिम्ब, स्पृश्य बिम्ब घ्रातव्य बिम्ब और आस्वाद्य बिम्बों का संश्लिष्ट रूप अंकित किया है। जैसे —

(क) ऐन्द्रिय बिम्ब –

दृश्य बिम्ब –

पीपल सी सूखी खाल स्निग्ध हो चली,
सिरिस ने रेशम की वेणी बाँध ली,
नीम के भी बौर में मिठास देख,
हँस उठी है कचनार की कली !

श्रव्य बिम्ब –

रेतीले कगार का गिरना छप-छड़ाप!
झंझा की फुफकार, तप्त,
पेड़ों का अररा कर टूट-टूट कर गिरना।
ओले की करीं चपत।

स्पृश्य बिम्ब-

1. **नर्तिता अपवर्ग की अप्सरा-सी वह**
शिखा मेरा भाल छूती हैं,
नेत्र छूती हैं,
वक्त्र छूती हैं।

2. **मलय का झोंका बुला गया**
खेलने से स्पर्श से
वे रोम-रोम को कँपा गया –

घ्रातव्य बिम्ब –

तुम्हारी देह
मुझ को कनक चम्पे की कली है
दूर ही से
स्मरण में भी गन्ध देती हैं।

आस्वाद्य –

जिन आँखों को तुमने गहरा
बतलाया था
उनसे भर-भर मैंने

रूप तुम्हारा पिया।

(ख) वस्तुपरक बिम्ब – इन बिम्बों के अन्तर्गत कवि ने मानव और प्रकृति सम्बन्धी विविध प्रकार के बिम्बों का विधान किया है। जैसे —

1. **तुम्हारे नैन**
   पहले भोर की दो ओस-बूँदें हैं
   अछूती, ज्योतिमय,
   भीतर द्रवित!

2. **पहले सागर आँक :**
   विस्तीर्ण प्रगाढ़ नीला,
   ऊपर हलचल से भरा
   पवन के थपेड़ों से आहत,
   शत-शत तरंगों से उद्वेलित!

3. **इन्हीं तृण-फूस छप्पर से**
   ढके ढुलमुल गँवारू
   झोंपडों में ही हमारा देश बसता है।
   × × ×
   इन्हीं के मर्म को अनजान
   शहरों को ढँकी लोलुप
   विषैली वासना का साँप डसता है।

4. **तुम जो बड़े-बड़े गद्दों पर ऊँची दूकानों में**
   उन्हें कोसते हो जो भूखे मरते हैं खानों में;
   तुम, जो रक्त चूस ठठरी को देते हो जल-दान
   सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घुणा का गान।

5. **वज्रकीर्ति ने मंत्रपूज जिस**
   अति प्राचीन किरीटी तरू से इसे गढ़ा था-
   उसके कानों में हिम-शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,
   कंधों पर बादल सोते थे,
   उसकी करि-शुंडों सी डालें
   हिम-वर्षा से पूरे बन-यूथों का कर लेती थीं परित्राण।

(ग) भाव-बिम्ब — कवि अज्ञेय ने रीति, आक्रोश, उल्लास, ममता, आस्था, श्रद्धा, अभिलाषा, तृष्णा, लालसा, आशा, निराशा, कामना, सुख, दुःख आदि से सम्बन्धित विविध प्रकार के भाव-बिम्बों की रचना की हैं; जिनमें सरसता, रमणीयता और सजीवता है। जैसे —

रति – स्नेह से आलिप्त
बीज के भवितव्य सा उत्फुल्ल

बद्ध – वासना के पंक-सी फैली हुई थी
धारयित्री सत्य-सी निर्लज्ज, नंगी
और समर्पित।

आक्रोश – हमने न्याय नहीं पाया है,
हम ज्वाला से न्याय करेंगे –
धर्म हमारा नष्ट हो गया,
अग्निधर्म हम हृदय धरेंगे।

उल्लास – मन में दुबकी हुलास ज्यों परछाई हो चोरी की,
तेरी बाट अगोरते ये आँखे हुई चकोर की।

व्यथा – निशा के उर में बसे आलोक-सी है व्यथा व्यापी–
प्यार में अभिमान की पर कसक ही
रोने नहीं देती।
पूर्णिमा की चाँदनी सोने नहीं देती।

जिजीविषा – ऊपर अधर में
हवा का एक बुलबुला-भर पीने को
उछली हुई मछली
जिसकी मरोड़ी हुई देह-वल्ली में
उसकी जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है।

आशा – किन्तु एक दिन खुल जायेगा
स्फटिक-मुकुर-सा निर्मल वापी का तल,
आशा का आग्रह हमें किये हैं बेकल।

करूणा – किन्तु नहीं क्या यही धुन्ध हैं सदावर्त
जिसमें नीरध्र तुम्हारी करूणा
बँटती रहती है दिन-याम?

(घ) आध्यात्मिक बिम्ब — कवि ने जीवन, जगत्, ब्रह्म, माया, मोक्ष, आत्मा, परमात्मा आदि से सम्बन्धित आध्यात्मिक बिम्बों का सृजन भी बड़ी तत्परता एवं तल्लीनता के साथ किया हैं, जिनमें सांस्कृतिक महत्व के साथ-साथ कलात्मक सौन्दर्य भी विद्यमान है। जैसे

1. दूर वासी मीत मेरे !

पहुँच क्या तुझ तक सकेंगे काँपते ये गीत मेरे?

2. मन्दिर तुम्हारा है, देवता हैं किसके?

प्रणति तुम्हारी है, फूल झरे किसके?

3. तू मिट्टी का किन्तु आज मिट्टी को तूने बाँध लिया हैं,

तू था सृष्टि स्त्रष्टा का गुर तूने पहचान लिया हैं,

4. रूपों में एक अरूप सदा खिलता हैं,

गोचर में अगोचर, अप्रमेय,

अनुभव में एक अतीन्द्रिय

पुरूषों में हर वैभव में ओझल अपौरूषेय मिलता है।

5. ओ आत्मा री तू गयी वरी,

ओ सम्पृक्ता, ओर परिणीता

महाशून्य के साथ भाँवरे तेरी रची गयीं।

5. अप्रस्तुत-विधान—कविवर अज्ञेय ने अपनी कविता को युग की भावनाओं के अनुकूल ढ़ालने के लिए विविध प्रकार के नवीन एवं सजीव उपमानों का प्रयोग किया हैं; इन उपमानों के द्वारा न केवल वस्तु-वर्णन को सजीव एवं मार्मिक बनाया है, अपितु भाव-चित्रण में भी रमणीयता एवं चारूता की सृष्टि की है। ये सभी उपमान हमारे इसी जीवन और जगत् के ही हैं, किन्तु कवि ने इनका चयन करके अपनी अभिव्यक्ति को रूचिर एवं सुन्दर बनाया है। सबसे अधिक कवि ने 'उपमा' अलंकार के लिए नये-नये उपमानों का सुन्दर प्रयोग किया है। जैसे, वासना ने पंक-सी फैली हुई थी धारियित्री, निशा के उर में बसे आलोक सी है व्यथा व्यापी, जम्हाई-सी स्फीत रातें, चिमटी से जकड़ी सी नभ की थिगली में तारों की विसरी सुइयाँ-सी यादें, अरूणाली पर घुटन की एक स्याही-छी छा गयी, 'करि-शुंडों-सी-डालें', 'स्फटिक-मुकुर-सा निर्मल वापी का तल' आदि पक्तियों में उपमा अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है। ऐसे ही 'टेसेओं की आरती सजा के', तुम्हारी देह मुझ को कनक-चम्पे की कली है', तुम्हारे नैन पहले भोर की दो ओस बूँदें हैं', तुम्हारे ओठ-उस पर दहकते दाड़िम-पुहुप को मूक ताकता रह सकूँ मैं देह-बल्ली रूप को एक बार बेझिझक देख लो', 'विद्युल्लता की कौंध की तरह' 'धरती सवत्सा' 'कामधेनु', लोचन दो-सम्पृक्त निविड़ की स्फटिक विमल वापियाँ, 'छायें-ममतामयी बाहें, 'साँस का पुतला हूँ मैं', 'काल की दुर्वह गदा', 'नीचे महामौन की सरिता दिग्विहीन बहती है', 'मैं वज्र कठोर हूँ-पत्थर सनातन' आदि पदों में रूपक अलंकार का वैशिष्ट्य विद्यमान है।

इसी भाँति कवि ने 'मोड़ के भीतर-घिरे हों बाँह मैं जो गुच्छ लाल बुरूँस के उत्फुल्ल', ओस-बूँद की ढ़रकन-इतनी कोमल, तरल की झरते-झरते मानो हर सिंगार का फूल बन गई, 'दूर पहाड़ों से काले मेघों की

बाढ़ हाथियों का मानो चिघाड़ रहा हो यूथ' आदि पंक्तियों में उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा, 'उड़ चल हारिल लिए हाथ में यही अकेला ओछा तिनका' पंक्ति में अन्योक्ति अलंकार के द्वारा, हरी बिछली घास, दोलती कलगी छरहरी बाजरे की में रूपकातिशयोक्ति अलंकार के द्वारा 'लजाती साँझ के नभ की अकेली तारिका ..... या शरद के भोर की नीहार-न्हायी कुई में संदेह अलंकार द्वारा, 'यह दीप-एक मधु है..... यह गोरस ..... यह अंकुर ..... यह 'प्रकृत' आदि में उल्लेख अलंकार के द्वारा, वैसी शीतल अनल-शिखा न फिर जली में विरोधाभास अलंकार के द्वारा, 'अरे अन्त:सलिला है रेत अनगिनत पैरों तले रौंदी हुई अविराम ..... पड़ी सज्जाहीन, धूसर-गौर, निरीह और उदार' में समासोक्ति अलंकार के द्वारा अपने कथन में चारूता एवं रमणीयता की सृष्टि की है।

प्राचीन अलंकारों के साथ-साथ कवि ने नूतन अलंकारों का प्रयोग भी बड़ी कलात्मकता, चारूता एवं रमणीयता के साथ किया है। जैसे, 'मलय का झोंका बुला गया' पीपल की सूखी खाल स्निग्ध हो चली, हँस उठी कचनार की कली, टेसुओं की आरती सजा के बन गई वधू वनस्थली, 'ऊषा जाग उठी प्राची में,' 'पूर्णिमा की चाँदनी सोने नहीं देती' 'स्मृति की सूखी सज्जा रूआँसी एक सहेली होगी', ऊँघ रहे हैं तारे, यह द्वीप अकेला स्नेह भरा है गर्व भरा मदमाता, तरंग पंखयुक्त वीणा पर पवन ने भर उमंग गाया, घाटी की पगडंडी जलायी और ओट हुई, सूनी-सी साँस एक दबे मेरे कमरे में आई थी, पथ सोया ही रहा, किनारे के क्षुप चौंके नहीं न काँपी डाल, न कोई पत्ती दरकी, 'वनखंडी में सधे खड़े चीड़े जागकर सिहर उछे, सनसना गये,' 'कितनी बरसातों कितने द्योतकों ने आरती उतारी' आदि पंक्तियों में मानवीकरण अलंकार ने विलक्षण चमत्कार उत्पन्न किया है। ऐसे ही लजाती साँझ, संकल्प मेरा द्रवित, आहुत' ममतामयी बाँहें, बाँझ अनुकम्पा, मुखर-तप्त वासनायें, गोपन लज्जा में लिपटा सहसा स्वर, 'ओटती कानी घृणा', 'ग्रधप्रवण शीतलता', अस्पर्श छुअन, जब तारों की तरल कँपकँपी स्पर्शहीन झरती है, आदि पदों में विशेषण-विपर्यय अलंकार का सौन्दर्य विद्यमान है। साथ ही पत्तियों पर बूँदों की पटापट, रेतीले कगार का गिरना छप-छड़ाप, मेंड से बहते जल की छुल-छुल, संध्या गोधूली की लघु टुनटुन, 'घरघराहट चढ़ती बहिया की', 'झंझा की फुफकार', 'पेडों का अरराकर टूट-टूट कर गिरना, 'गर्जन घुर्घअ, चीख, भूँक, हुक्का, चिचियाहट आदि पंक्तियों में ध्वन्यर्थ व्यंजना अलंकार का माधुर्य विद्यमान है।

6. छन्द-विधान—कवि अज्ञेय ने पहले तो अधिकांश कवितायें मात्रिक एवं वार्णिक छन्दों में लिखी थीं और गीतिका, बरवै, हरिगीतिका, रोला, वीर छन्द को अपनाकर या तो मात्रिक छन्दों में रचनाएँ प्रस्तुत की थीं या मालिनी, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता आदि वार्णिक छन्दों को अपनाया था। परन्तु धीरे-धीरे कवि को यह अनुभव हुआ कि शास्त्रीय छन्दों के शिकंजे में जकड़कर उसकी कविता परतन्त्र एवं पराधी हो गई है और वह कुण्ठित एवं निष्प्राण सी जान पड़ती है। अत: वह अपने विचारों एवं भावों को स्वतन्त्र एवं उन्मुक्त ढ़ंग से व्यक्त करने के लिए मुक्त छन्द की ओर प्रवृत्त हुआ। वैसे भी कवि अज्ञेय में स्वर, लय एवं गति-युक्त पद्य लिखने की प्रवृति अधिक नहीं दिखाई देती। कवि को काव्यात्मक गद्य लिखने में अधिक आनन्द आता है और स्वच्छन्द लिखना अधिक प्रिय है। वैसे कवि ने लोक-धुन पर भी गीत लिखे हैं। गीत के बारे में कवि का विचार है कि "यो तो कोई भी कवि गीत लिख सकता है, लेकिन काव्य में गीत का स्थान गौण ही है। यह कोई लिखे, पर उस दशा में मैं उसे कवियों की पंक्ति में न रखकर संगीतकारों के वर्ग में—या अधिक से अधिक संधि-रेखा पर रखूँगा। लेकिन आज का गीतकार प्राय: दोनो ही कोटियों में से रह जाता है, क्योंकि एक ओर अपने बँधे हुए छन्दों में वृत्त-प्रधान या वर्ण-प्रधान हो जाने के कारण उसकी रचनाओं में गीति-तत्व बहुत क्षीण हो जाता है और दूसरी ओर अतिशय वृत्तात्मकता के कारण वह संगीतकारों की पंक्ति से भी च्युत हो जाता है।" अत: आगे चलकर उन्होंने मात्रिक एवं वार्णिक छन्द लिखना केवल मुक्त-छन्दों में ही अपनी कविताएँ अधिक लिखी हैं। इस प्रकार उनके छन्द विधान को सर्वप्रथम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं — (क) गेय प्रगीत (ख) मुक्त छन्द। गेय प्रगीतों के अन्तर्गत ही गजल, बहर, लोक-धुन आदि पर लिखित गीत भी आ जाते हैं। जैसे —

1. **वे रोगी होंगे प्रेम जिन्हें अनुभव-रस का कटु प्याला है**
   वे मुर्दे होंगे प्रेम जिन्हें सम्मोहनकारी हाला है;
   मैंने विदग्ध हो जान लिया, अन्तिम रहस्य पहचान लिया
   मैंने आहुति बनकर देखा, यह प्रेम यज्ञ की ज्वाला है।

2. **दूर रहने की हृदय में ठानती हो क्या!**
   तुम पुरूष की वासना को जानती हो क्या?

कवि ने अपने कुछ प्रगीत लोक-धुन के आधार पर भी लिखे हैं, जिनमें कवि की नवीनता एवं मौलिकता भी दृष्टिगोचर होती है —

ओ पिया, पानी बरसा!
खड़-उड़ कर उठे पात, फड़क उठे गात!
देखने को आँखें, घेरने को बाँहें,
पुरानी कहानी?
ओठ को ओठ, वृक्ष को वक्ष –
ओ पिया, पानी!
मेरा हिया तरसा
ओ पिया, पानी बरसा!

कवि के मुक्त छन्दों को सुगमता की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं — (क) लय एवं तुक से परिपूर्ण मुक्त छन्द, (ख) लय एवं तुक से विहीन मुक्त छन्द और (ग) गद्यात्मक मुक्त छन्द।

(क) लय एवं तुक युक्त मुक्त छन्द — कवि ने ऐसे मुक्त छन्द पर्याप्त मात्रा में लिखे हैं, जिनकी सभी पक्तियाँ वैसे तो स्वतन्त्र एवं उन्मुक्त हैं, किन्तु उनमें कहीं तो दूसरी, चौथी और छठी पंक्तियों के अन्त में तुकें मिल जाती हैं, कभी, पहली, दूसरी, तीसरी और पाँचवी पंक्तियों के अन्त में तुकें मिलती हैं; कभी दूसरी, पाँचवी, आठवीं और ग्यारहवीं पंक्तियों के अन्त में तुकें मिलती हैं; कभी पहली, तीसरी, पाँचवी, सातवीं पंक्तियों के अन्त में तुकें मिलती हैं तथा कभी एक-एक आयाम या वाक्य के अन्त में तुकें मिलती हैं जैसे —

1. **चेत उठी ढीली देह में लहू की धार,**
   बेध गयी मानस को दूर की पुकार,
   गूँज उठा दिग्दिगंत
   चीन्ह के दुरन्त यह स्वर बार-बार
   'सुनो सखि। सुनो बंधु
   प्यार ही में यौवन है, यौवन में प्यार'

2. **पूर्णिमा की चाँदनी**
   सोने नहीं देती।
   चेतना अन्तर्मुखी स्मृति लीन-होती है,

देह भी पर सजग है जैसे –

खोने नहीं देती।

3. रेत का विस्तार

नदी जिसमें खो गई

कृशधार

झरा मेरे आँसुओं का भार

– मेरा दुःख-धन,

मेरे समीप अगाध पारावार –

उसने सोख सहसा लिया

जैसे लूट के बटमार!

(ख) लय एवं तुक से हीन मुक्त छन्द—कवि ने दूसरे प्रकार के वे मुक्त छन्द लिखे हैं, जिनमें कहीं भी तुकें नहीं मिलतीं और न लय का ही कोई क्रम है। ये छन्द पूर्णतया स्वतन्त्र एवं उन्मुक्त गति से प्रवाहमान पहाड़ी झरनों की तरह रचे गये हैं। जैसे—

1. तुम्हारी देह

मुझको कनक-चम्पे की कली है

दूर ही से

स्मरण में भी गंध देती है।

(रूप स्पर्शातीत वह जिसकी लुनाई

कुहासे-सी चेतना को मोह ले।)

2. देखो देह –

वल्ली।

भव्य बीज रूपाकारों का

'निर्गंधा इव किंशुकाः'

गंध के उपभोक्ता किन्तु कहें तो

कब हम वसन्त के उन्मेष को

नहीं उस एक संकेत से पहचान सके?

(ग) गद्यात्मक मुक्त छन्द—कवि ने ऐसे मुक्त छन्द भी पर्याप्त मात्रा में लिखे हैं, जो पूर्णतया गद्यात्मक हैं या गद्य-काव्य के नमूने हैं। इनके अन्तर्गत कवि के भाव एवं विचार पूर्णतया गद्य की पंक्तियों में ही व्यक्त हुए हैं और गद्य की इन पंक्तियों में न लय है, न गति है, न प्रवाह है और न क्रमबद्धता है; अपितु ये पंक्तियाँ गद्य-काव्यों की तरह ही लिखी गई हैं। जैसे—

1. **वज्र अनजाने, अप्रसूत, असंधीत सब**
गल जाते हैं :
उन प्राणों का एक बुलबुला-भर पी लेने को—
उस अनन्त नीलिमा पर छाये रहते हो
जिसमें वह जनमी है, जियी है, पली है, जियेगी,
उस दूसरी अनन्त प्रगाढ़ नीलिमा की ओर
विद्युल्लता की कौंध की तरह
अपनी इयत्ता की सारी आकुल तड़प के साथ उछली हुई
एक अकेली मछली ।

2. **ओ विशाल तरू!**
शत सहस्र पल्लवन-पतझरों ने जिसका नित रूप सँवारा,
कितनी बरसातों, कितने खद्योतों ने आरती उतारी,
दिन भौंरे कर गये गुंजारित,
रातों में झिल्ली ने अनथक मंगल गान सुनाये,
साँझ सवेरे अनगिन
अनचीन्हें खग-कुल की मोद भरी क्रीड़ा-काकलि
डाली-डाली को कँपा गयी–

निष्कर्ष यह है कि कवि अज्ञेय प्रयोगशील नूतन काव्य-धारा के प्रवर्तक होने के कारण जहाँ नूतन विषयों की ओर आगामी कवियों को अग्रसर करने वाले हैं, वहाँ शिल्प के नूतन उपकरणों की ओर भी कवियों का ध्यान केन्द्रित करने वाले हैं, क्योंकि नयी कविता में आज जैसा वर्ण्य-विषय एवं जैसा शिल्प प्रयुक्त हो रहा है, उसके प्रेरक एवं पथ-प्रदर्शक किसी सीमा तक अज्ञेय ही हैं। यह दूसरी बात है कि जिस तरह अज्ञेय टी० एस० इलियट से प्रभावित होकर इस नूतन काव्य-शिल्प की ओर प्रवृत्त हुए हैं, वैसे ही नई कविता-धारा के कुछ नवीन कवि भी इलियट के साथ-साथ सात्र मूनियर, कमिंग्स, एजरा पौंड आदि से प्रभावित हुए हैं और उनकी प्रवृत्तियों को हिन्दी काव्य-धारा में लाने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। ऐसे नूतन प्रयोगों का हिन्दी काव्य-क्षेत्र में आना तो बुरा नहीं हैं, किन्तु उनका अन्धानुकरण करना अवश्य बुरा है। इससे कवि के अन्तर्गत 'अहं' की प्रवृत्ति जागती है और वह हर नई बात को दूसरों का ऋण न मानकर अपनी बनाकर कहने का आदी बन जाता है। यही कारण है कि कवि अज्ञेय के घोषणा-पत्रों अथवा भूमिकागत वक्तव्यों में कही भी किसी दूसरे के प्रति आभार प्रदर्शित न होकर सब कुछ अपनी ही देन बनाने की अहमन्यता अथवा सम्पूर्ण नये प्रयोगों के लिए अपना ही महत्व स्थापित को करने को अपने जीवन का चरम लक्ष्य बना लिया है और वह उसी को गद्य अथवा पद्य में जहाँ अवसर मिलता है प्रदर्शित करने का प्रयास करता है। इससे नई धारा के अन्य कवियों में भी यह दूषित मनोवृत्ति जाग रही हैं। वे सभी स्वयं अज्ञेय का ऋण न मानकर अपनी-अपनी देन का गुणगान करने में अथवा अपने को सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र घोषित करने में धन्य समझते हैं। अत: यह तो निर्विवाद सत्य है कि अज्ञेय ने अपने अथक प्रयास से हिन्दी काव्य-क्षेत्र में छायावादी दूरारूढ़ कल्पना युक्त रोमांटिक कविताओं तथा

प्रगतिवादी राजनीतिक विचारधारा को लेकर चलने वाली वर्ग-संघर्षमयी कविताओं के स्थान पर नूतन विचार-प्रधान कविताओं को जन्म दिया है, उन्हें लिखने के लिए प्रेरणा दी है और स्वयं भी उनकी रचना की है, किन्तु उन्हें सर्वथा नूतन, मौलिक आदि कहना समीचीन नहीं है। उन पर पाश्चात्य प्रभाव अधिक है। इसलिए कवि अज्ञेय में भारतीय परम्परा में विकसित कल्पना, नूतन अलंकारों एवं प्रतीकों की प्रधानता, न होकर नूतन कज्पना, नूतन बिम्ब-विधान, नूतन अल्कार-विधान और नूतन प्रतीक-विधान की उत्कण्ठा अधिक दिखाई देती है और इसलिए अज्ञेय की कविता के साथ साधाणीकरण का होना कहीं-कहीं तो सर्वथा असम्भव जान पड़ता है। इतना अवश्य है कि उनकी भाषा परिष्कृत हैं, उसमें कहीं-कहीं चित्रोपमता भी है और गहन भावों के चित्रण की क्षमता भी है। ऐसे ही कवि की रचना-शिल्प भी प्रौढ़ एवं प्राजल है। यह दूसरी बात है कि उसमे रचना कौशल दूसरे प्रकार का है, जिसके अनूकूल अभी वातावरण निर्मित नहीं हुआ है। इसलिए ये सभी नई कविताएँ अस्पष्ट अनगढ़, दूषित एवं अनर्गल-सी प्रतीत होती हैं।

इकाई (Unit)

4

अज्ञेय काव्य में प्रेमभाव एवं काव्य अभिव्यक्ति

संरचना

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 अज्ञेय के काव्य में दार्शनिकता
अद्वैतवाद
रहस्यवाद
क्षणवाद
जीवन-मृत्यु बोध
काव्य बोध
अस्तित्ववादी जीवन दर्शन
4.4 अज्ञेय के काव्य में प्रकृति एवं प्रेम
मानवीकरण
प्रकृति और जीवन
प्रणयानुभूति
4.5 सारांश
4.6 प्रश्नावली

4.1. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का उद्देश्य है—

- इस इकाई में हम अज्ञेय के जीवन दर्शन का विभिन्न परिपेक्ष्य में अवलोकन करेंगे।
- अज्ञेय के लिए प्रकृति उनकी सहचरी ही नहीं उनके प्रेम की अभिव्यक्ति का माध्यम भी है।
- इस इकाई में हम अज्ञेय के प्रकृति प्रेम के विषय में पढ़ेंगे।

4.2. प्रस्तावना (Introduction)

अज्ञेय के काव्य में आधुनिकता से युक्त पारंपरिक जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति होती है। उन्होंने हिन्दी कविता को ऐसा मिश्रित जीवन-दर्शन दिया है जो पाश्चात्य आधुनिकता और भारतीय परम्परा को एक साथ पुष्ट करता है। उनकी कविता एक ओर पाश्चात्य विचारधारा 'क्षणवाद' से प्रभावित है तो दूसरी ओर भारतीय अद्वैतवाद से जुड़ी है। उन्होंने भारतीय एक पाश्चात्य जीवन-दृष्टियों को समन्वित किया है। अज्ञेय का

अद्वैतवाद रहस्वाद की भाँति ब्रह्म और आत्मा का संबंध तो स्वीकार करता है परन्तु उनका अद्वैतवाद ईश्वरोन्मुख नहीं है।

प्रकृति का साहचर्य मानव जीवन को रस-रूप-रंग से भर देता है और अज्ञेय के संदर्भ में यह कथन सटीक बैठता है। वैदिक ऋचाओं से लेकर आधुनिक कविता तक प्रकृति-चित्रण की अटूट परम्परा रही है। कवि ने सदैव प्रकृति के प्रति आकर्षण की अनुभूति की है, वह कभी उसके पल-पल परिवर्तित होने वाले सौंदर्य का रसास्वादन करता है तो कभी उसे अपने सहचरी बनाकर उसके साथ अपने सुख-दुःख साझा करता है। अज्ञेय ने अपने काव्य में प्रकृति को एक नवीन दृष्टि से देखा है। उनका कहना है—

"मानवेतर ही प्रकृति है, वह सम्पूर्ण परिवेश, जिसमें मानव रहता है, जीता है, भोगता है और संस्कार ग्रहण करता है स्थूल दृष्टि से देखने पर प्रकृति मानवेतर का वह अंश हो जाती है, जो कि इन्द्रियत्रोचर है, जिसे हम देख, सुन, छू सकते हैं और जिसका आस्वादन कर सकते हैं।

छायावाद की तरह अज्ञेय प्रकृति के बाह्य रूप की ही प्रशंसा नहीं करते हैं अपितु प्रकृति उनके लिए एक व्यक्ति विशेष है जिसके व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू को वे समान रूप से प्रेम करते हैं। अज्ञेय अपने व्यक्तित्व को ही प्रकृति के व्यक्तिव के समान रूप से महत्व देते हैं और यह बात उनकी प्रकृति सम्बंधी कविताओं को भरपूर अवलोकित होती है।

4.3. अज्ञेय के काव्य में दार्शनिकता

अज्ञेय को अनेक संरचनाओं में उनका दार्शनिक सौंदर्य उजागर होता है। उनकी दार्शनिकता परिवेश और संस्कृति से अर्जित ज्ञान और अनुभूति से प्रभावित है और यही कारण है कि उनकी कविताओं में भी दार्शनिक प्रभाव प्रत्यक्ष होता है। अज्ञेय अपने दार्शनिकता के विषय में अज्ञेय का मत है—

"मैं दार्शनिक बना ऐसा मैं नहीं जानता अपने को दार्शनिक मानता भी नहीं हूँ। ..... थोड़ा बहुत दर्शन पढ़ा है, कुछ दार्शनिक प्रश्नों में रूचि है। बाकी जीवन के प्रति सतत जिज्ञासा मुझ में है और चीजों को समझने की कोशिश करता हूँ—समझने के लिए उनके बारे में सोचता हूँ।"

अज्ञेय की यह जिज्ञासा अन्वेषी है और यही अन्वेषण उनके काव्य में दार्शनिकता का आधार है। उनकी कविताओं में भारतीय और पाश्चात्य, दोनों का दर्शन हमें देखने को मिलता है।

4.3.1. अद्वैतवाद—भारतीय दर्शन का मुख्य तत्व है आत्मा। आत्मा अजर है, अमर है और सनातन है। वेद, पुराणों ने भी आत्मा की शाश्वतता को सिद्ध किया है। अज्ञेय भी भारतीय दर्शन के शुद्ध व्यापक रूप को स्वीकारते हैं, आत्मा की सत्ता उनको भी स्वीकार्य है।

अज्ञेय आत्मा को "मैं" के रूप में अनुभूत करते हैं। प्रकृति के पदार्थों में कवि को इस "मैं" को, आत्मा की अनुभूति होती है—

"मैं सोते के साथ बहता हूँ, पक्षी के साथ गाता हूँ,
वृक्षों के कोपलों के साथ थरथराता हूँ,
और उसी अदृश्य क्रम में, भीतर ही भीतर
झरे पत्तों के साथ गलता और जीर्ण होता हूँ
नए प्राण पाता हूँ।"

अज्ञेय को इस आत्मा की अनुभूति ही नहीं है। वे इस आत्मा और परमात्मा को महाशून्य का एकाकार रूप देखते हैं—

"ओ आत्मा री

कव्या भोली कंवारी

महाशून्य के साथ भांवरे तेरी रची गई।"

भारतीय दर्शन आत्मा और परमात्मा की सत्ता को स्वीकारता है। आत्मा जीव-चेतन है जो मन और इन्द्रियों से घिरा रहता है। वाचस्पति गैरोला के अनुसार—

उपनिषदों में जीव को व्यैक्तिक आत्मा और आत्मा को परम आत्मा कहा गया है और बताया गया है कि दोनों क्रमशः अंधकार और प्रकाश की भांति एक ही गुफा में निवास करती हैं। ..... जीव अनुभूतियुक्त कर्मफलों के बंधन में जकड़ा हुआ है, किन्तु आत्मा अज, अनादी और नित्य है और कर्मफलों के बंधन से विमुक्त है। जीव का लक्ष्य होता है आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना और सारे बंधनों और द्वैत भाव को मिटाकर अद्वैत की ओर उन्मुख होना।"

अज्ञेय भी इस मत को स्वीकारते हैं और मानते हैं जीव शरीर के पिंजरे में बंद है और आत्म शक्ति से वह गतिमान है। यहाँ आत्मशक्ति आत्मा है।

"देह

बल्ली!

रूप को

एक बार बेझिझक देख के। पिंजरा है? पर मन इसी से उपजा है

जिसकी उन्नति शक्ति आत्मा है।"

आत्मा सर्वव्यापी परम सत्ता है और उपनिषद में इसे ब्रह्म कहा गया है। अज्ञेय मानते हैं कि यह जड़ चेतनमय विश्व ब्रह्म का शरीर है और ब्रह्म आत्मा है। उनका यही भाव उनकी कविता में भी परिलक्षित होता है।

"महाशून्य

वह महा मौन

अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अद्रात्रेय

जो शब्दहीन

सब में गाता है।"

"असाध्य वीणा" की इन पंक्तियों में महाशून्य, महामौन का वर्णन परमतत्व, ब्रह्मात्मा का संकेत है। अज्ञेय के काव्य में इस महाशून्य और महामौन का प्रयोग उनकी दार्शनिक दृष्टि को दिखाता है

महाशून्य और महामौन वह परमतत्व और सृजनकर्ता है जिसका स्वरूप हमारे चारों ओर तरंगित हो रहा है। किरीट तन से बनी वीणा में साधक को उस ब्रह्म का साक्षात्कार होता है जो सब में समाहित है।

4.3.2. रहस्यवाद : अज्ञेय का विश्वास असीम सत्ता में अवश्य है किन्तु वह विश्वास ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है। वे रहस्यवादी हैं। वे परमशक्ति में लीन हो जाना चाहते हैं। जिसका वे अंश हैं।

"लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है"

× × × ×

"एक असीम अणु उस असीम शक्ति को जो उसे प्रेरित करती है,

अपने भीतर समा लेना चाहता है,

उसकी रहस्यमयता का परदा खोलकर उसमें मिल जाना चाहता है

यही मेरा रहस्यवाद है।''

अज्ञेय का रहस्यवाद छायावाद के रहस्यवाद से भिन्न है। छायावाद में जहाँ रहस्यवाद के उपरोक्ष अनुभूति में विश्वास करता है, वही अज्ञेय का रहस्यवाद वैज्ञानिक है। छायावाद में रहस्यवाद भात में होता है और अज्ञेय का रहस्यवाद विज्ञान से संबन्धित है। इस सम्बन्ध में रमेश ऋषिकल्प का कथन है—

''अज्ञेय के रहस्यवाद की दिशा विज्ञान से प्रेरित है जो चेतना के विकास की ओर उन्मुख है''

अज्ञेय रहस्यात्मक सत्ता का अन्वेषण करते हैं और मानते हैं कि विराट की सत्ता का मानव चेतना से घना संबंध है। मानव चेतना असीम सत्ता की ज्योति से ही प्रकाशित है। अज्ञेय इस असीम सत्ता को शून्य कहते हैं। अज्ञेय के शून्यवाद में बौद्ध दर्शन के महायान शाखा के शून्यवाद का प्रभाव स्पष्ट होता है—

''शून्य को भजता हुआ मैं भी

पराजय बरजता हूँ

चेतना मेरी बिना जाने

प्रभा में निमजती है

मैं स्वयं इस ज्योति से अभिषिक्त

सजता हूँ।''

4.3.3. क्षणवाद : शून्य की ही भाँति अज्ञेय की कविताओं में क्षण का भी आग्रह है। कवि मानते हैं कि मनुष्य हर क्षण का उपभोग करता है इसलिए वे हर क्षण को महत्व देते हैं। वे क्षण को अनुभूति के साथ जोड देते हैं और कहते हैं—

''क्षण का आग्रह क्षणिकता का आग्रह नहीं है। वह अनुभूति की प्राथमिकता का आग्रह है। अनुभूति को अनुभावक से अलग नहीं किया जा सकता। अनुभूति अद्वितीय है क्योंकि कोई दूसरे की अनुभूति नहीं भोग सकता।''

इस कारण अज्ञेय हर क्षण के महत्व को स्थापित करना चाहते हैं। शून्यवाद की भाँति ही अज्ञेय का क्षणवाद बौद्ध दर्शन से प्रेरित है। ''सर्वेक्षणिकम'' इनका मुख्य सिद्धान्त है जो संसार की क्षणिकता का बोध कराता है। अज्ञेय को भी जीवन क्षणिकता का बोध है—

क्षण-क्षण जो मरता दिखता है, अविरल अंत:सत्व है

जीवन की गति धारा है या एक लड़ी है - क्रम अनवाछिन्न है,

हर क्षण आगे पीछे बंधा हुआ है, इसलिये पर अद्वितीय है, भिन्न है''

4.3.4. जीवन मृत्यु बोध : अज्ञेय के काव्य में जीवन और मृत्यु की दार्शनिक व्याख्या भी मिलती है। मृत्यु शाश्वत सत्य है और विज्ञान भी इस सत्य को बदल नहीं सकता है। अज्ञेय इस सत्य को स्वीकारकरते हैं। वे मानते हैं कि व्यक्ति का जीवन ह्रदय स्पंदन पर आश्रित है। जब तक यह स्पंदित होता रहता है तभी तक जीवन भी है। अज्ञेय उसे सांसा का पुतला कहते हैं जो वृद्धावस्था और मरण धर्म से बंधा है—

''सांस का पुतला हूँ मैं

जरा से बंधा हूँ और

मरण को दे दिया गया हूँ।''

अज्ञेय को इस मृत्यु की जिज्ञासा भी है। वे जीवन-मृत्यु की दार्शनिकता की पहेलियों को हल करना चाहते हैं, इसलिए वे प्रश्न करते हैं—

शिखर पर क्या है गजराज?

..... मृत्यु

क्या मृत्यु ही है शिखर पर?

मृत्यु शिखर पर क्यों है''

क्या यहाँ नहीं है, नहीं हो सकती?''

जहाँ जीवन है वहाँ मृत्यु है, अर्थात मृत्यु अवश्यंभावी है। अज्ञेय को यह तथ्य पूर्णत: स्वीकार्य है। उनके लिए जीवन बस साँस की आने-जाने की प्रक्रिया है—

''श्वांस की दो क्रियाएँ खींचना फिर छोड़ देना,

कब भला संभव हमें इस अनुक्रम को तोड़ देना।''

4.3.5. कालबोध : अज्ञेय का दर्शनकाल से भी जुड़ा हुआ है। काल अर्थात् समय भूतकाल, वर्तमान काल और भविष्यकाल। तीनों काल का संबंध हमारी अनुभूतियों से है। काल के बिना मनुष्य की सत्ता सिद्ध नहीं की जा सकती है। काल के संदर्भ में अज्ञेय कहते हैं—

''काल की प्रतिति, गति की उन्मुखता अथवा प्रतिमुखता की प्रतीति है। उन्मुखता की प्रतीति से भविष्य का, और प्रतिमुखता की प्रतिति से अतीत का बोध होता है।''

अज्ञेय मानते हैं कि हमारी चेतना वर्तमान में स्थित होकर हमें भविष्य का और अतीत का ज्ञान कराती है। वह गति जो हमारी चेतना को तीनों कालों में गतिमान रखती है, वह है हमारा चित्त। चित्त की गति से ही हमें अतीत और भविष्य की अनुभूति होती है। वे कहते हैं—

जिस अतीत को मैं भूल गया हूं वह

अतीत नहीं है क्योंकि वह

वर्तमान अतीत नहीं है

जिस भविष्य से मुझे कोई अपेक्षा नहीं है

भविष्य नहीं है क्योंकि वह

वर्तमान भविष्य नहीं है।

स्मृतिहीन, अपेक्षाहीन, वर्तमान

ऐसा वर्तमान क्या वर्तमान है?

वही क्या है?

4.3.6. काल बोध : अज्ञेय का काल दर्शन पाश्चात्य बुद्धिवादी दर्शन से प्रेरित है। काल का संबंध व्यक्ति के होने के अस्तित्व से जुड़ा है और इसी से उसको अपने का अनुभूति होती है। अज्ञेय का विचार है कि मनुष्य एक चेतना सत्ता है और उसकी अपनी निज उच्चता है। अज्ञेय के काल दर्शन में मनुष्य के ''मैं'' को स्वतंत्र अभिव्यक्ति है। अज्ञेय मानते हैं कि मनुष्य का ''मैं'' है तभी उसमें चेतना की अनुभूति है। अज्ञेय की कविताएँ व्यक्ति के महत्व को स्थापित करती हैं। वर्तमान में, वैज्ञानिक युग में व्यक्ति की यह स्वतंत्रता बाधित हो रही है जिससे उसमें निराशा का भाव उत्पन्न हो रहा है।

"ऐसा क्यों हो
कि मेरे नीचे सदा खाई हो
जिसमें मैं जहाँ भी पैर टेकना चाहूँ
भंवर उठे क्रुद्ध,
मैं किनारों को मिलाऊँ
पर जिनके आवागमन के लिए राह बनाऊँ
उनके द्वारा दोनों ओर से रौंदा जाऊँ?"

इस प्रकार हम देखते हैं कि अज्ञेय का जीवन-दर्शन उनकी तार्किकता पर आधारित है। अज्ञेय के दर्शन सम्बंधी दृष्टि का भारतीय, पाश्चात्य एवं वृद्धि दर्शन के विचारों से प्रभावित है। उनके विचारों में सत्यान्वेषण औरआत्मान्वेषण के प्रति आग्रह दिखाई देता है। अत: कह सकते हैं कि दर्शन के सम्बंध में अज्ञेय की विचारधारा नवीन और आधुनिक है।

4.4. अज्ञेय के काव्य में प्रकृति और प्रेम

अज्ञेय का अपने जीवन में यदि किसी से निकट सम्बंध रहा है तो वह है प्रकृति। यह कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि प्रकृति के सानिध्य में ही उनके व्यक्तित्व का गठन हुआ है। अज्ञेय के लिए प्रकृति उनकी सहचरी रही है। उनका बचपन प्रकृति के साहचर्य में बीता है। उन्होंने अपने जीवन के बहुत से अनुभव प्रकृति निरंतर सानिध्य और उसके निरीक्षण से प्राप्त किया तथा उसके विविध रूपों से भी परिचित हुए। अज्ञेय ने प्रकृति से जीवन दर्शन ही नहीं सीखा अपितु प्रकृति को विविध रूपों में प्रेम किया और प्रकृति को प्रेम अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है।

4.4.1. बन्धुत्व प्रेम मानवीकरण—अज्ञेय का महत्व प्रकृति को नई अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत करने में है। उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रकृति के नाना रूपों को प्रकट किया है। उनके लिए प्रकृति कभी माता है, तो कभी सखा है। वे प्रकृति से सुख-दु:ख बाँटते प्रतीत होते हैं। उनके लिए प्रकृति मित्र है, बंधु और मानव से भी अधिक विश्वसनीय है। वे कहते हैं—

"बंधु है नदियाँ: प्रकृति भी बन्धु है
और क्या जाने कदाचित
बंधु 'हरी घास पर क्षण-भर'
मानव भी।"

उक्त पंक्तियों में अज्ञेय को मनुष्य के बंधुत्व पर संदेह है। वे प्रकृति की नदियों से ज्यादा अपना मानते हैं। प्रकृति के सानिध्य में खुलापन है, उन्मुक्तता है जो मानव समाज की क्रत्रिमता से परे है। वर्तमान में रिश्तों में अविश्वास, ईर्ष्या-द्वेष की भावना ने रिश्तों में एक क्रत्रिमता एक दूरी बनाई है। अत: कवि को प्रकृति का सानिध्य ज्यादा सहज, सरल है और क्रत्रिमता से युक्त है।

अज्ञेय प्रकृति का कभी बंधु रूप में मानवीकरण करते हैं तो कभी उसके एक अनुपम सुंदरी के रूप में प्रेम करते हैं। वे प्रकृति के विभिन्न सौंदर्यात्मक रूपों का वर्णन कर अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं। अंतिम आलोक में कवि कहते हैं—

"संध्या की किरष परी ने उठ अरुण पंख दो खोले
कंपित-कर गिरी शिखरों के उर-छिपे रहस्य टटोले

देखी उस अरुणी किरण ने कुल पर्वत-माला श्यामल

बस एक श्रृंग पर हिम का था कंपित कंचन झलमल।

इन पंक्तियों में कवि ने संध्या का मानवीकरण कर उसके सौंदर्य को उकेरा है।

डॉ० भगीरथ मिश्र के अनुसार सौंदर्य के दो पक्ष होते हैं — एक बाह्य और दूसरा आंतरिक। बाह्य सौंदर्य इंद्रियों को प्रभावित करता है और आंतरिक सौंदर्य मन, चेतना और आत्मा को। जब बाह्य सौंदर्य और आंतरिक सौंदर्य मिल जाता है तो वहां सौन्दर्य स्थाई रूप से मन पर प्रभाव डालता है। यही प्रेम है। प्रकृति के बाह्य सौंदर्य और आंतरिक सौंदर्य ने मिलकर कवि के चेतन मन पर प्रभाव डाला है इसलिए बंधु रूप में ही सुन्दरी रूप में, प्रकृति ने उनके जीवन को रस-रूप-गंध से भर दिया है।

4.4.2. प्रकृति और जीवन—कवि ने प्रकृति को प्रेम से जोड़ा है और अपनी संवेदनाएँ व्यक्त की हैं। अज्ञेय का मत है कि प्रकृति अपने उपादानों द्वारा मनुष्य को जीवन दर्शन ही नहीं देती अपितु वह अपनी संवेदनाएं व्यक्त करने का माध्यम भी है। "इत्यलम्" की "आषाढस्य प्रथम दिवसे" में कवि ने प्रकृति को जीवन से जोड़ा है और अपनी संवेदनाएं अभिव्यक्त की हैं। जिस प्रकार प्रकृति के सूखेपन को वर्षा हरा-भरा और सरस बनाती है। प्रकृति के इस उपादान को कवि जीवन में डोम की वर्षा से जोड़ा है।

"धन आकाश में दिखा

वह आएगी

भरी ढांप लेगी नग अपनी देह से बहते स्नेह से

अभी रेत हूं पर हो जाऊंगा हरा गति-जीवित भरा"

उक्त पंक्तियों में वर्षा के पानी से प्रकृति की हरियाली की बात कही गई है तो दूसरी ओर इन पंक्तियों में कवि के जीवन में प्रेम में कुंठा भावना भी प्रकट होती है। इस प्रकार प्रकृति कवि की सुख-दुःख की साथी है।

4.4.3. प्रणयानुभूति—अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति प्रणयानुभूति के साथ भी प्रकट हुई है। प्रकृति उनके लिए प्रेम अभिव्यक्ति का माध्यम भी रही है। प्रकृति कवि सुख में साथ हंसती और दुःख में साथ रोती प्रतीत होती है। अज्ञेय ने अपने प्रेम की अभिव्यक्ति के प्रकृति के उपादानों का प्रयोग नई दृष्टि के साथ किया है। वे छायावादी रहस्यात्मकता से हटकर आधुनिक जीवन में प्रकृति के संपर्क को महत्व देते हैं। अज्ञेय अपनी प्रेमिका को हरी घास सी मानते हैं जो सहज और जिसका अंतर संयत है, स्थित है, जो सम्पूर्णतः प्राकृतिक है—

"हो प्राकस्य: तनो मत कटी-छटी उस बाड़ सरीखी

नमो, खुल खिलो सहज मिलो

अंत:स्मित, अंत:संयत हरी घास सी"

(हरी घास पर क्षण भर)

'कलत्री बाजरे की' में प्रेमिका—

अज्ञेय अपनी प्रेमिका को बिछली घास और दोलती कलत्री छरहरी बाजरे की कहते हैं क्योंकि—

"सृष्टि के विस्तार का ऐश्वर्य का—औदार्य का

कहीं सच्चा, कहीं प्यारा एक प्रतीक

बिछली घास है,"

A-HINDI-103(H)

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणिः पष्यन्तु माकष्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

Swami Vivekanand
SUBHARTI UNIVERSITY
Subhartipuram, NH-58, Delhi-Haridwar Bypass Road,
Meerut, Uttar Pradesh 250005
Phone : 0121-243 9043
Website : www.subhartidde.com, E-mail : ddesvsu@gmail.com